नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचारपत्र • (संयुक्तांक) वर्ष 6 अंक 5–6
जून–जुलाई 2004 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

भाजपा गठबन्धन सरकार की लीक पर आगे बढ़ रही कांग्रेस गठबन्धन सरकार

मनमोहनी नारों और ढपोरशंखी घोषणाओं के बीच पूँजी की सेवा और मेहनतकशों पर हमले जारी

सम्पादक

कांग्रेस की अगुवाई में केन्द्र की नयी गठबन्धन सरकार सत्ता सम्हालने के साथ ही देशी-विदेशी पूँजीपतियों की सेवा में मुस्तैदी से जुट गयी है। जनता को भरमाने के लिये प्रधानमंत्री महोदय मनमोहनी नारे उछालने में जुटे हुए हैं और सरकार एक से बढ़कर एक लोकलुभावन और ढपोरशंखी घोषणाएं कर रही है। उधर चुनावी अखाड़े में धूल चाटने के बाद खिसियाई हुई भगवा ब्रिगेड संसद के भीतर और बाहर हुल-हपाड़ा कर जनता की नजरों में फिर से चढ़ने की कवायद कर रही है। चूँकि किसी नीतिगत मसले पर कांग्रेस गठबन्धन से भाजपाइयों का कोई विरोध नहीं है इसलिये उन्हें सरकार में शामिल दागी मंत्रियों और संघी राज्यपालों को हटाने के मुद्दे ही फिलहाल सूझ रहे हैं।

नयी सरकार से देश के पूँजीपति भी मगन हैं और उनके विदेशी आका भी गदगद। आखिर कांग्रेस उनकी पुरानी भरोसेमन्द पार्टी जो ठहरी। जब नयी आर्थिक नीतियों का एक धुरन्धर पैरोकार सरकार की कमान सम्भाले हो और वित्तमंत्री की कुर्सी पर उनका वफादार मुनीम तो फिर काहे का गम। संसदीय वामपन्थी बातबहादुरों के सरकार में शामिल होने की सम्भावना से औंधे मुँह गिर पड़े शेयर बाजार में तो रौनक तभी लौट आयी थी जब प्रधानमंत्री महोदय ने शपथग्रहण के तत्काल बाद पूँजी के स्वामियों को यह आश्वासन दिया कि "आर्थिक सुधार जारी रहेंगे।" सरकार के न्यूनतम साझा कार्यक्रम पर सरकारी वामपन्थियों की मुहर लग जाने के बाद तो पूँजी बाजार के खिलाड़ियों की खुशी का पारावार न रहा। शेयर बाजार धड़ल्ले से फल-फूल रहा है।

भूमण्डलीकरण को 'मानवीय चेहरा' देने की बात एक ढकोसला

न्यूनतम साझा कार्यक्रम देशी-विदेशी पूँजी की अधिकतम संभव लूट का कार्यक्रम

मेहनतकश जनता को गुमराह करने के लिये लोकलुभावन घोषणाएँ

नकली वामपन्थी पूँजीवादी व्यवस्था की हिफाजत करने की असली भूमिका में

नयी सरकार का न्यूनतम साझा कार्यक्रम पुरजोर शब्दों में "आर्थिक सुधारों" (यानी भूमण्डलीकरण की विनाशकारी आर्थिक नीतियों) के प्रति अपनी वचनबद्धता का इजहार करता है। यह अगर किसी मामले में पिछली सरकार के न्यूनतम साझा कार्यक्रम से अलग है तो सिर्फ इस मामले में कि इसमें 'गरीब जनता के आँसू पोंछने', 'मानवीय चेहरे के साथ भूमण्डलीकरण' और 'लाभ कमाने वाले सार्वजनिक प्रतिष्ठानों का निजीकरण नहीं' जैसी लोकलुभावन जुमलेबाजियों की छौंक-बघार लगा दी गयी है। यानी कुल मिलाकर यह सरकार वाजपेयी सरकार के ढर्रे पर ही चलेगी। इससे इतर कुछ उम्मीद भी नहीं की जा सकती है। कांग्रेस पूंजीपतियों की पुरानी विश्वसनीय पार्टी है। यह भी भूलने की बात नहीं कि 1991में नरसिंह राव-मनमोहन सिंह सरकार ने ही नयी आर्थिक नीतियों का श्रीगणेश किया था।

"मानवीय" भूमण्डलीकरण की मजबूरियाँ

एक तरफ पूँजीपतियों से आर्थिक "सुधारों" को जारी रखने का वादा और दूसरी ओर गरीबों-वंचितों के आँसू पोंछने का दावा-यह दोमुँहापन नयी गठबन्धन सरकार की मजबूरी और जरूरत दोनों है। नयी सरकार के कर्ता-धर्ताओं ने पिछले लोकसभा चुनाव नतीजों से यह सबक निकाला है कि सामाजिक नतीजों की परवाह किये बिना निजीकरण-छँटनी-तालाबन्दी की नीतियों को अन्धाधुन्ध लागू करना समूची व्यवस्था के लिये घातक हो सकता है। अहम बात यह है कि यह सबक केवल देश की नयी सरकार के कर्ता-धर्ताओं ने ही नहीं वरन पूरी दुनिया के पूँजीपतियों और उनके भाड़े के विचारकों ने निकाला है। यह अनायास नहीं है कि भूमण्डलीकरण को "मानवीय चेहरा" प्रदान करने का जुमला मनमोहन सिंह ही नहीं वरन अन्तरराष्ट्रीय पूँजी की सेवा करने वाले विश्व बैंक, अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी तमाम संस्थाओं के दस्तावेजों में आजकल खूब चलन में

(पेज 4 पर जारी)

गाँव-किसान की दुहाई लेकिन मलाई मुनाफोखोरों को

नई केन्द्र सरकार का पहला आम बजट

विशेष संवाददाता

दिल्ली। पी. चिदम्बरम ने एक बार फिर खुद को देशी-विदेशी पूँजीपतियों का वफादार मुनीम साबित कर दिखाया। हालाँकि इस बार वह 'ड्रीम बजट' नहीं पेश कर पाये लेकिन गाँव-किसान की तान छेड़ते हुए भूमण्डलीकरण की धुन पर वित्तमंत्री महोदय ने इतना सन्तुलनकारी नाच दिखाया है कि उनके आका गदगद हो उठे हैं। गरीब आबादी को ओस चटाते हुए उन्होंने मुनाफाखोरों के लिये इतनी मलाई परोस दी है कि वे अगले बजट तक इसे चाटते रहेंगे।

भूमण्डलीकरण की डगर पर

प्रधानमंत्री पद की शपथ लेते ही मनमोहन सिंह ने उद्योग जगत को 'सुधारों' को जारी रखने का जो आश्वासन दिया था चिदम्बरम ने उसे अमली जामा पहना दिया। सबसे महत्वपूर्ण नीतिगत फैसला करते हुए वित्तमंत्री महोदय ने दूरसंचार, बीमा और नागरिक विमानन क्षेत्र में विदेशी पूँजी की घुसपैठ के दरवाजों को इतना चौड़ा कर दिया है कि अब वह धड़ल्ले से घुसती चली आयेगी। दूरसंचार क्षेत्र में विदेशी निवेश की मात्रा 49 से बढ़ाकर 74 प्रतिशत, बीमा क्षेत्र में 26 से बढ़ाकर 49 प्रतिशत और नागरिक विमानन क्षेत्र में 40 से बढ़ाकर 49 प्रतिशत कर दी गयी है। इस सवाल पर सरकार को बाहर से समर्थन दे रहे संसदीय कॉमरेड हालांकि लाल-पीले हो रहे हैं, लेकिन उनकी यह नाराजगी मुँह फुलाने वाली पतुरियों से अधिक मायने नहीं रखती। सरकार के असली कर्ता-धर्ता जानते हैं कि ये मुँह फुलाने से ज्यादा कुछ नहीं कर सकते।

सरकारी उपक्रमों को बेचने के मामले में भी कोई नीतिगत बदलाव नहीं किया गया है। चिदम्बरम ने बस कान घुमाकर पकड़ा है। विनिवेश मंत्रालय खत्म कर अब निवेश आयोग बना दिया गया है। जो काम पिछली सरकार डंके की चोट पर कर रही थी अब वह लुका-छिपी का खेल खेलते हुए किया जायेगा। बजट भाषण में भी चिदम्बरम ने सरकार का यह दावा दुहराया कि लाभ कमाने वाले सरकारी उपक्रमों को नहीं बेचा जायेगा। लेकिन कौन नहीं जानता कि लाभ कमाने वाले उपक्रमों में घाटा दिखाना घाघ नौकरशाहों के बायें हाथ का खेल है। नरसिंह राव सरकार में जब मनमोहन सिंह वित्तमंत्री थे तो उन्होंने अपने पहले बजट में बीमार उद्योगों के पुनरुद्धार के नाम पर औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (बी.आई.एफ.आर.) बनाया था। इस बोर्ड का असली काम था बीमार उद्योगों के लिये मौत का परवाना काटना। अब चिदम्बरम ने इसकी जगह सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम पुनर्गठन बोर्ड का गठन किया है। इस बोर्ड का काम भी पहले वाले बोर्ड की तरह ही होगा, बस साइनबोर्ड बदल दिया गया है। वित्त मंत्री महोदय ने एनटीपीसी के 5 प्रतिशत शेयर बेचने की घोषणा भी इस बजट में कर दी है।

एक अन्य अहम फैसला करते हुए चिदम्बरम ने लघु उद्योगों के लिये आरक्षित 85 उद्योगों को इस सूची से हटा दिया है। तात्पर्य यह कि बड़े उद्योगपतियों को मुनाफा कमाने के लिये 85 नये क्षेत्र उपलब्ध करा दिये गये हैं। पूँजी के तर्क के मुताबिक अब इन क्षेत्रों में पहले से मौजूद छोटे उद्योगों को बड़ी पूँजी निगल जायेगी।

(पेज 8 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

माँ-बाप की लाठी बनें या पढ़ें?

मैं नोएडा के सेक्टर-8 की झुग्गी में रहता हूँ और बच्चों को पढ़ाने का काम करता हूँ। मैं अपने आस-पास के बच्चों की जीवन स्थितियों और बाल श्रम पर प्रकाश डालना चाहता हूँ।

झुग्गी के बच्चों के लिए बुनियादी सुविधाओं का ही नितांत अभाव है। बिजली, पानी, अस्पताल, स्कूल व पार्क आदि, इनमें से किसी चीज की स्थायी व्यवस्था नहीं है। बिजली के नाम पर वही टिमटिमाती हुई रोशनी। कहीं एक तार की घुच्ची (कटिया) फंसा ली गयी और घर में एक छड़ गाड़कर अर्थिंग की व्यवस्था की ली गयी है। बीच में ही तार के लूट लिये जाने, हवा से तार के हिलने आदि से या तो लाइन कट जायेगी या आंख-मिचौनी करती रहेगी। पीने के पानी की कोई सरकारी व्यवस्था नहीं है। जिस तरह बिजली के लिए कटिया फंसा लेते हैं उसी तरह करीब दस फीसदी लोगों ने दूर-दराज की पाइपलाइनों से कनेक्शन खोंस लिये हैं। बाकी सबके लिये चांपाकल (हैण्डपम्प) है जिसके सहारे करीब प्रति हैण्डपम्प 10 परिवार गुजारा करते हैं। खास तौर पर बच्चे हैण्डल पकड़ने लायक हैं तो जरूर घंटे भर के लिये धूप में लाइन लगा लेंगे और कूद-कूद कर डिब्बे-बाल्टी भर लेते हैं।

स्कूल के नाम पर हरौला (से-5), न्यू कोण्डली (सीमावर्ती दिल्ली) में और से-12 में एक-एक स्कूल हैं। इन्हीं पर से-8, से-9, से-10 तथा से-5 की झुग्गियों के लगभग बीस हजार बच्चों का भविष्य निर्भर करता है। यहां ज्यादातर बच्चे स्कूल तब जाते हैं जब काम नहीं रहता। कुछ तो स्कूल के बोझ तले दबने से अच्छा मौज से कूड़ा बीनते हैं क्योंकि उनके माँ-बाप दोनो काम पर गये रहते हैं। जो नियमित पढ़ने जाते हैं उनमें ज्ञान का स्तर पब्लिक स्कूलों की अपेक्षा बहुत कम है। इक्के-दुक्के परमानेंट नौकरी करने वाले या किसी और उद्यम से थोड़ा अधिक रकम जुटा लेने वाले लोगों के बच्चे पब्लिक स्कूलों में भी जाते हैं। लेकिन आज तक मुझे यहाँ कोई बीए या बीएससी का छात्र नहीं मिला। क्योंकि काम भर की आवश्यक जरूरतों को जानने-समझने भर की पढ़ायी पूरी होते ही पूरी तरह काम पर लग जाना पड़ता है।

अस्पताल के नाम पर से-30 में एक सरकारी अस्पताल है जिसके बारे में कुछ लिखने की जरूरत नहीं सामान्य अखबारों में रोज ही छपता है।

मनोरंजन के नाम पर घटिया अश्लील भोजपुरिया व बम्बइया फिल्मों के गीत, एलबम, सीरियल व फिल्में हैं और कुछ नहीं। टीवी सभी झुग्गियों में है, यहां तक कि कुछ लोगों के पास रंगीन टीवी भी हैं लेकिन कभी सुकून भरा प्रसारण नहीं आता। खेलने के लिए एक भी पार्क नहीं है। जहां कहीं कोई चौड़ा गलियारा या कोई कोना-अंतरा मिला गया, जहां बच्चे उछल-कूद कर सकें, वही बच्चों का पार्क बन जाता है। लेकिन इन जगहों पर थोड़ी भी बारिश हुई नहीं कि ये कीचड़ से भर जाते हैं।

बच्चों के भविष्य की सबसे बड़ी तबाही का कारण उनके गार्जियन की आर्थिक तंगी है। जिन हाथों में कॉपी और पेन्सिल होना चाहिए वे हाथ अभी से पेट भरने की जुगत में लग गये हैं। यह एक कड़वा सच है कि हेल्पर के स्तर के बाप और बेटे दोनों को अपनी-अपनी खुराकी जुटानी पड़ती है और माँ को भी।

यहाँ बच्चों की आधी आबादी किसी न किसी रूप में पूर्ण या आंशिक रूप से अलग-अलग तरह के कामों से जुड़ी है। कपड़ों में सितारा लगाना, बच्चों का गुदरा सिलना, सोल्डरिंग करना, मोटर वाइंडिंग करना, खिलौने बनाना, जूते का सोल सिलना, हरी धनिया के छोटे-छोटे बण्डल बनाना, फ्रेम गाँछना (पर्दे पर लगाने के काम आने वाले छल्लों और अन्य प्लास्टिक के सजावटी सामानों पर सिल्वर और अन्य धातुओं की कोटिंग के लिये कोटिंग मशीन पर चढ़ाने के लिये फ्रेम में कसना), कूड़ा बीनना, दुकानों पर सुबह-शाम काम करने से लेकर, माँ-बाप दोनों काम पर जा सकें इसके लिए छोटे बच्चों को सम्भालना। इसके साथ ही सुबह-शाम खाना बनाना और पानी के लिये हैण्डपम्प पर लाइन लगाना आदि। जितने भी काम कम्पनी से बाहर लाये जा सकते हैं सारे कामों में बच्चे भागीदारी करते हैं। और इन सभी कामों से आमदनी का औसत यही है कि एक माँ और उसके दो बच्चे मिलकर बमुश्किल 100 रुपये खड़ा कर पाते हैं।

इस जमीनी सच्चाई को मुँह चिढ़ाते हुए बाल श्रम पर सबके अपने-अपने मापदण्ड हैं। तमाम बुर्जुआ पत्रकारों का अलग, तथाकथित समाजसेवियों, स्वयंसेवी संगठनों का अलग और नौकरशाहों का अपना अलग पैमाना है। नोएडा का लेबर विभाग तो यह मानता ही नहीं कि होटलों, ढाबों आदि में कप प्लेट धोने वाले बच्चे बाल श्रमिक हैं। उसकी नजर में ये बच्चे पारिवारिक कामों में मदद करते है। इस पैमाने पर पूरे नोएडा में केवल आठ बाल श्रमिक चिह्नित किये गये हैं। लेकिन उन बच्चों के बारे में क्या जायेगा जिनके पूरे परिवार का अस्तित्व इस बात पर निर्भर करता है कि बच्चे पूरे दिनभर श्रम करें, वह भी औसतन 12 घंटे। उनके बचपन को बाजार में बेचकर ही पूरे परिवार का पेट भरता है। कुछ बच्चे तो अपने गार्जियन का विकल्प बने रहते हैं और उनकी गणना परिवार में कमाऊ पूत की होती है।

एक दिन मैं पढ़ा रहा था कि एक लड़का, जो फ्रेम गांछने का काम करता है, आया और स्वभाव के विपरीत चुपचाप बैठ गया। मैंने उससे पूछा क्यों बड़े उदास हो, तुम्हारी पिटाई हुई है क्या? वह कुछ नहीं बोला। ज्यादा जोर देने पर उसने बताया कि "मम्मी कह रही थीं कि आज काम ज्यादा मिल गया है, आज काम करो, पढ़ने मत जाओ। मैं बैग लेकर भागने लगा तो मम्मी ने दौड़ा कर मुझे पीट दिया और कहा है कि तेरी पढ़ाई कल से छुड़ा दूंगी।"

शाम को जब मैं उसके घर गया तो उस समय माँ-बेटे फ्रेम गांछने का काम कर रहे थे। लड़के की नन्हीं-नन्हीं उँगलियां बिजली की भांति तार पर चल रही थीं। वह बड़ी फुर्ती से हुक (छल्ले) को उठाता तार में लपेटता और फ्रेम में कस देता। उसकी माँ ने बताया कि इसको मना कर रही थी कि आज पढ़ने मत जाओ, आज काम ज्यादा आ गया है, हम दोनों मिलकर कर लेंगे। लेकिन मेरी एक नहीं सुनता। आखिर एक दिन पढ़ने नहीं जायेगा तो क्या बिगड़ जायेगा। इस पर लड़का बिगड़ गया और खीझ कर बोला कल भी तो मैं भाग कर पढ़ने गया था और परसों? इस पर उसकी माँ बोली "चुप कर, पढ़-लिख लेगा तो क्या कलेक्टर बन जायेगा? अपना काम है मेहनत करना।"

(पेज 4 पर जारी)

चुनो कल

नौजवानो!
समय नहीं बचा
अब जरूरी है
चुनना
तुम्हें
अपना कल
रोजगार की भयानक दौड़,
अपने बल-बूते
इज्जत की जिंदगी
की तैयारी?
या मौत सी जिन्दगी
रीढ़हीन सरकारी दरबारी?
या फिर
पूजाघरों के दरवाजों पर
नाकारा भिखमंगों की
घिनौनी लाचारी?

- दीपा, लखनऊ

बिगुल का नया ईमेल दर्ज कर लें :
bigul@rediffmail.com

बिगुल के पाठक साथियों और शुभचिन्तकों से एक अपील

'बिगुल' के पिछले सात वर्षों का सफर तरह-तरह की कठिनाइयों-चुनौतियों से जूझते गुजरा है। इस दौरान अनेक नये हमसफर हमारी टीम से जुड़े हैं और पाठक-साथियों का दायरा भी काफी बढ़ा है। कहने की जरूरत नहीं कि अब तक का कठिन सफर हम अपने हमसफरों और शुभचिन्तकों के संग-साथ के दम पर ही पूरा कर सके हैं। हालात संकेत दे रहे हैं कि आगे का सफर और अधिक कठिन और चुनौती भरा ही नहीं बल्कि जोखिमभरा भी होगा। हमें विश्वास है कि हम अपने दृढ़संकल्प और हमसफर दोस्तों की एकजुटता के दम पर आगे ही बढ़ते रहेंगे।

'बिगुल' अपने पुरअसर तेवर और अपने विशिष्ट जुझारू अंदाज के साथ आपके पास नियमित पहुंचता रहे, इसके लिए अखबार के आर्थिक पहलू को और अधिक पुख्ता बनाना जरूरी है। जाहिर है कि यह अपने संगी-साथियों और शुभचिन्तकों की मदद के बिना मुमकिन नहीं। हमारी आपसे पुरजोर अपील है कि :

- **बिगुल के स्थायी कोष के लिए अधिकतम संभव आर्थिक सहयोग भेजें।**
- **जिन साथियों की सदस्यता समाप्त हो चुकी है वे यथाशीघ्र नवीनीकरण करा लें।**
- **बिगुल के नये सदस्य बनायें।**
- **बिगुल के वितरण को और व्यापक बनाने में सहयोग करें।**
- **कुछ वितरक साथियों के पास बिगुल के कई अंकों की राशि बकाया है। इसे यथाशीघ्र भेजकर बिगुल नियमित प्राप्त करना सुनिश्चित कर लें।**

सहयोग राशि बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से सम्पादकीय कार्यालय के पते पर भेजें। बैंक ड्राफ्ट 'बिगुल' के नाम से भेजें।

-सम्पादक

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और जिम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
सम्पादकीय उपकार्यालय	: जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ
दिल्ली सम्पर्क	: 29, यू.एन.आई. अपार्टमेण्ट, जीएच-2, सेक्टर-11, वसुंधरा-गाजियाबाद-201010
ईमेल	: bigul@rediffmail.com

मूल्यः एक प्रति-रु. 3/- वार्षिक-रु. 40.00 (डाक खर्च सहित)

बिगुल

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध :

1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफी हाउस बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे तक)
3. जाफरा बाजार, गोरखपुर-273001
4. 989, पुराना कटरा, यूनिवर्सिटी रोड, मनमोहन पार्क, इलाहाबाद
5. जनचेतना सचल स्टाल (ठेला) चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8)

मेहनतकश साथियों के लिए जरूरी कुछ पुस्तकें

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा -लेनिन 5/-
मकड़ा और मक्खी -विल्हेल्म लीब्कनेख्त 3/-
ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके -सर्जी रोस्तोवस्की 3/-
अनवश्वर है सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं 10/-
समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति 12/-
क्यों माओवाद? 10/-
बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में 5/-
मई दिवस का इतिहास 5/-
अक्टूबर क्रान्ति की मशाल 12/-
पेरिस कम्यून की अमर कहानी 10/-

बिगुल विक्रेता साथी से मांगें या इस पते पर 17 रु. रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें: जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ।

बंगाल की जूट मिलों की बंदी-मजदूरों का गहराता शोषण : एक संक्षिप्त रिपोर्ट

● **त्रिवेणी प्रकाश त्रिपाठी**

अप्रैल-मई के महीने पश्चिम बंगाल की जूट मिलों की बंदी के महीने रहे। एक के बाद एक सात मिलें एक महीने के अंदर बंद कर दी गईं। मजदूर जब ड्यूटी पर गए तो देखा गेट पर बंदी का नोटिस चिपका हुआ है। न कोई पूर्व सूचना, न कोई संकेत। पश्चिम बंगाल की जूट मिलों के लिये यह कोई नयी बात नहीं है। कांग्रेसी शासन में भी यही होता था और 1977 से सत्तारूढ़ तथाकथित वाम मोर्चे के समय में भी होता आ रहा है।

सन 1970-71 से पहले, पश्चिम बंगाल में लगभग 67 जूट-मिलें थीं। इनमें लगभग 13 तो हमेशा-हमेशा के लिये बंद हो चुकी हैं। 1970 से 1990 के बीच बंद हुई इन मिलों के लगभग 45 हजार मजदूर समय की गुफाओं में न जाने कहाँ विलीन हो गये। बहुत से अपने गाँव वापस चले गये । बहुत से रिक्शाचालक, फेरीवाले बन गये या कुछ ऐसा ही छिटपुट काम करके किसी तरह गुजर-बसर करने लगे। इनमें से आधों की अब तक मौत हो चुकी है।

इस समय पश्चिम बंगाल में 54 जूट मिलें हैं जिनमें लगभग 2 लाख मजदूर काम करते हैं। इन 54 में से 12 मिलें इस समय बंद हैं (जिनमें 7 तो अप्रैल-मई में ही बंद हुई हैं) इन बंद मिलों के लगभग 40,000 मजदूर बेकार हो गये हैं। ये जूट मिलें हावड़ा, हुगली, उत्तरी, दक्षिणी 24 परगना जिलों में स्थित हैं। हावड़ा की 15 जूट मिलों में तीन तो लोकसभा चुनाव के कुछ दिन पहले ही बंद हुईं थीं और दो : फोर्ट विलियम मिल तथा हनुमान जूट मिल दिल्ली सरकार के बनते-बनते बंद कर दी गईं : 20-22 मई के बीच। बंद करने का पैटर्न लगभग एक सा। सुबह की पाली के मजदूर जब ड्यूटी करने गये तो देखा गेट पर मिल बंदी का नोटिस लटक रहा है - अनिश्चित काल की बंदी का नोटिस।

एक समय पश्चिम बंगाल की अर्थव्यवस्था में जूट और जूट मिलों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान था। पर 1970 के बाद से इसका महत्व लगातार घटता जा रहा है। नायलॉन एव पॉलिथीन तथा अन्य सिंथेटिक वस्तुओं के बाजार में आ जाने से देशी एवं विदेशी बाजार में जूट से बनी चीजों की खपत लगातार घटी है। मगर मिल-मालिक इससे उत्पन्न समस्या का बोझ मजदूरों के कंधे पर लादते रहे हैं। आज भी लाद रहे हैं। मशीनों के आधुनिकीकरण के नाम पर कम दरों में सरकार एवं अन्य संस्थानों से पैसा तो लिया पर ज्यादातर उसे लगा दिया दूसरे उद्योगों में। पुरानी मशीनें, पुरानी तकनीक, सिकुड़ता बाजार। बलि का बकरा-मजदूर।

सन् 1970-71 में लगभग ढाई लाख जूट मिल मजदूर थे। अब लगभग डेढ़ लाख मजदूरों को ही काम मिलता है। आठ-दस मिलें किसी न किसी समय बंद ही कर दी जाती हैं। जूट मिल मजदूरों की दुर्दशा देखनी है तो उत्तर चौबीस परगना जिले के इलाकों-जैसे कि आलम बाजार, कमर हट्टी, टीटागढ़ में जाइये और उत्तरी हावड़ा जाइये। गरीबी, बीमारी, बेकारी, निरक्षरता ताँडव नृत्य करती दिखाई देंगी। मनुष्य किन अमानवीय अवस्थाओं में रहने के लिये मनुष्य द्वारा ही बाध्य कर दिया जाता है-यह यहाँ स्पष्ट देखा जा सकता है। मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का नृशंस रूप।

सन् 1960-80 के बीच जूट मिलों के मजदूरों ने सीटू, एटक एवं अन्य वामपंथी यूनियनों के नेतृत्व में लड़ाइयां लड़ीं। कुछ जीतीं कुछ हारे। पर 1977 में ज्योति बसु एण्ड कम्पनी की सरकार आने के बाद फतवा दिया गया-'हड़ताल मजदूरों का आखिरी हथियार है'। नतीजतन, 1985 के बाद कोई भी जुझारू लड़ाई जूट-मिल मजदूर नहीं लड़ पाये और तब से यूनियन के नेतृत्व के एक अंश, मिल-मालिक एवं 'वाम-फ्रंटी' सरकार की तिकड़ी ने भीतरी समझौता करके मजदूरों के अधिकारों पर लगातार आक्रमण किया है। मजदूरों का शोषण लगातार बढ़ता रहा है-वामफ्रंट सरकार आने के बाद से। संशोधनवादी, प्रतिक्रियावादियों से भी अधिक खतरनाक हो सकते हैं-अगर यह समझना है तो पश्चिम बंगाल सरकार की करतूतों का पिछला 25 वर्ष का इतिहास देखना पर्याप्त होगा।

बाजार जरा सा सुस्त हुआ नहीं कि मिल मालिक यूनियन के कुछ नेताओं से सांठ-गांठ करके मिल बंदी का नोटिस झुला देते हैं। कभी-कभी पूरी बंदी न कर आंशिक बंदी कर देते हैं। श्रम कानून ताक पर रख दिये जाते हैं। वे सिर्फ मजदूरों को दबाने के लिये हैं-मिल मालिकों को अनुशासित करने के लिये नहीं।

मिल मालिक जोर दे रहे हैं कि वे सिर्फ रोज की मजदूरी सौ रुपये देंगे। कोई बोनस या ग्रेच्युटी नहीं देंगे। महंगाई भत्ता भी नहीं देंगे। मालिक छंटनी करना चाहते हैं। कुछ विभागों को बंद कर देना चाहते हैं और कुछ विभागों में ठेके पर काम कराना चाहते हैं। वे इस बात पर अड़े हैं। मजदूरों के दस्तखत चाह रहे हैं और एकतरफा निर्णय ले रहे हैं। मजदूरों से बात करने से कन्नी काट रहे हैं। और तोहमत लगाते हैं कि काम के समय मजदूर बैठे गपशप करते हैं, ढंग से काम नहीं करते। मजदूर नेता पश्चिम बंगाल की वामफ्रंट सरकार के श्रम मंत्री इत्यादि के चक्कर लगा रहे हैं। वाम-फ्रंटी नेता 'अपनी' दिल्ली सरकार की ताजपोशी का जश्न मना रहे हैं। 12 बंद जूट मिलों के चालीस हजार मजदूर एवं उनके परिवार भुखमरी के दिन गुजार रहे हैं। पश्चिम बंगाल सरकार के 'मार्क्सवादी' मुख्यमंत्री बाबू बुद्धदेव भट्टाचार्य बंगाल की मेहनतकश जनता को 'विकास' का लॉलीपाप दिखा रहे हैं।

भूख से हो रही मौतें और चूहे!

समाजवाद की जुगाली करने वाली पश्चिम बंगाल की सीपीएम सरकार के राजकाज में भूख एवं कुपोषण से हो रही मौतों की आंधी ने वहां की "समानता" की चादर को उड़ा दिया है और "लोकतांत्रिक" तरीके से समाजवाद लाने के पाखण्ड को उघाड़कर रख दिया है। इसकी एक बानगी झारखण्ड से लगे आमलासोल के कांकराझोर गांव में देखने को मिली, जहां पिछले कुछ हफ्तों में कुल तेरह लोगों की मौत हो गयी जिसमें आठ तो बच्चे ही थे। भूख एवं कुपोषण से तथा दवा-दारू के अभाव में उन्होंने दम तोड़ दिया। उस गांव में सरकारी इलाज की सुविधा भी नहीं है। इस घटना से शासन-प्रशासन में हड़कम्प मच गया। कोई अधिकारी इस घटना से इनकार करने लगा तो कोई जांच कराने की बात करने लगा।

दरअसल, गांव की बंजर जमीन के खेती के उपयुक्त न होने की वजह से लोग जंगली लकड़िया आदि बेचकर अपनी जीविका चलाते हैं। अब पुलिस ने जंगल में लकड़ी बीनने पर भी रोक लगा दी है, जिससे उस गांव की लगभग पूरी आबादी के ऊपर अस्तित्व का संकट आ गया है। बंगाल की सत्ताधारी पार्टी के ही एक स्थानीय नेता ने इन मौतों की पुष्टि की है जबकि सीपीएम दिल्ली में कांग्रेस का गाल सहलाने में लगी हुई है।

दूसरी ओर कर्नाटक द्वारा तमिलनाडु को कावेरी नदी का पानी न देने की वजह से वहां के तटीय इलाके में किसान बिलों में से निकलने वाले चूहों को मारकर खाने पर मजबूर हो गये हैं। इन दिनों कई परिवार चूहों के भरोसे जी रहे हैं। बहुत से लोगों को उस गांव में चूहों की खोज में बिलों को खोदते और दिन भर चूहों को पकड़ने की कोशिश करते देखा जा सकता है। वैसे सेठों-पूंजीपतियों के गोदामों में अनाज सड़ता रहता है और चूहे उसे खाते रहते हैं; लेकिन तमिलनाडु में तंजावुर के पास के गांवों में अनाज के अभाव में किसानों द्वारा चूहों को ही खाकर जीविका चलाने की घटना ने इस बर्बर व्यवस्था की अमानवीयता को ही और अधिक उजागर कर दिया है।

पिछले तीन साल से कावेरी के मेट्टुर बांध के दरवाजे नहीं खुले हैं जिससे किसानों को पानी नहीं मिल पा रहा है। भूख की कठिन मार ने इन वर्षों में चूहों को मारकर खाने पर मजबूर कर दिया हैं इसलिये अब चूहे भी डरकर भाग गये हैं। ज्यादातर किसानों ने तो खेती से नाता ही तोड़ लिया है। गांव के गांव सूने पड़े हैं। ज्यादातर लोग कर्नाटक या केरल में फैक्टरियों में मजदूरी करने चले गये हैं। अपने बच्चों को जिन्दा रखने का उनके पास सिर्फ यही एक तरीका बचा है। सरकारी योजनायें हमेशा की ही तरह खोखली साबित हुई हैं। काम के बदले अनाज कार्यक्रम भी चुनावी वायदों का खाली कनस्तर ही साबित हुआ। स्थिति जस की तस है।

जहां एक तरफ भूख एवं कुपोषण से मौतें हो रही हैं, आर्थिक तंगी से आये दिन आत्महत्याएं हो रही हैं। अनाज के अभाव में लोग चूहे खाने पर मजबूर हो रहे हैं; वहीं दूसरी ओर ऐयाश और विलासी नेताओं द्वारा सिर्फ जलपान पर ही 35-40 लाख रुपये बहा दिये जा रहे हैं और पूंजीपतियों-धन्ना सेठों के गाल लाल हुए जा रहे हैं। पूंजीवादी समाज का वैभव मेहनतकश-गरीब आबादी के खून और आंसुओं पर टिका हुआ है। और यह वैभव गरीबों के हरकत में आते ही उनके खून और आंसुओं के समन्दर में डूब जायेगा, यह तय है। जीने के लिये चूहों के बिलों को खोदने वाले हाथ, इस मानवद्रोही व्यवस्था की जड़ों को भी खोद रहे हैं; यह भी साफ-साफ दिख रहा है।

● **राकेश**

यह गलत है कि खाद्यान्न संकट का कारण बढ़ती जनसंख्या है

अपने देश के तथा दुनिया के पूंजीवादी अर्थशास्त्री व विचारक लगातार यह प्रचार करते रहते हैं कि खाद्यान्न संकट का कारण जनसंख्या विस्फोट नहीं है। कुछ वर्षों पूर्व काहिरा में सम्पन्न हुए जनसंख्या सम्मेलन में पृथ्वी की समूची आबादी लगभग सवा छह अरब आंकी गयी थी और यह बात भी उभरकर सामने आयी थी कि दुनिया भर में इतना खाद्यान्न है कि अगर पृथ्वी की आबादी आठ-दस गुना बढ़ जाये तो भी खाद्यान्न संकट उत्पन्न नहीं होगा। यह बात उसी समय सम्मेलन में भाग ले रहे पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों के दिमाग में आ गयी थी।

बात दिमाग में तो आ गयी लेकिन हजम नहीं हुई। इसका नजारा पिछले दिनों सार्क (दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन) देशों की कृषि एवं ग्रामीण विकास तकनीकी कमेटी के उद्घाटन के अवसर पर बैठक में देखने को मिला जब यह कहा गया कि "जनसंख्या बढ़ने से अनाज की मांग बढ़ रही है। दक्षिण एशिया की बढ़ती जनसंख्या के सभी लोगों के लिये खाद्य सुरक्षा निश्चित करने लिये सीमित प्राकृतिक संसाधनों के साथ अतिरिक्त उत्पादन करना होगा। उत्पादन बढ़ाने के लिये नये क्षेत्रों की पहचान करनी होगी।" जबकि सच्चाई तो यह है कि वितरण की असमानता की वजह से खाद्यान्न संकट उत्पन्न होता है। वह चाहे सोमालिया में भुखमरी की समस्या हो, उड़ीसा के कालाहांडी में हो, या कहीं और हो।

तथ्य तो उल्टी गवाही देते हैं। कीमतें गिर जाने के डर से नफाखोरी के दलाल अनाजों को गोदामों में सड़ने देते हैं। अमेरिका में हजारों हेक्टेयर फसलों को जला दिया जाता है और दूध का दाम अपने मानक से गिर न जाये लिहाजा डेनमार्क में गायों को काटकर फेंक दिया जाता है। अमेरिका में ही डिब्बाबंद खाद्य पदार्थों को समुद्र में फेंक दिया जाता है। मुनाफाखोर यह सब बर्दाश्त कर लेते हैं लेकिन मुनाफे में कमी उन्हें कतई बर्दाश्त नहीं होती।

इसी कारण, यह अनाज आम गरीब-मेहनतकश आबादी तक नहीं पहुंच पाता और यह क्रूर व्यवस्था "जनसंख्या विस्फोट-जनसंख्या विस्फोट" चिल्लाती रहती है। उसके भोंपू (टीवी, अखबार आदि) इस मिथ्या प्रचार में दिलोजान से लगे रहते हैं और आम पढ़ी-लिखी आबादी के एक अच्छे-खासे हिस्से में भी यह भ्रम पैदा कर देते हैं कि खाद्यान्न संकट का कारण जनसंख्या विस्फोट ही है। हालांकि, इसकी पोलपट्टी तो माल्थस के जमाने में ही खुल गयी थी। पूंजीवादी अर्थशास्त्री माल्थस ने यह हास्यास्पद तर्क दिया था कि जनसंख्या के गुणोत्तर श्रेणी (2, 4, 16, 256...) के बढ़ने की तुलना में उत्पादन समान्तर श्रेणी (2, 4, 6, 8, 10...) में ही बढ़ता है जिसके कारण खाद्यान्न संकट उत्पन्न हो जाता है। माल्थस ने बड़ी ही बेहयाई से वितरण की असमानता और पूंजीवादी शोषण पर पर्दा डालने की कोशिश की थी, जिसको पहले ही बेनकाब किया जा चुका है। दुनिया के पहले दौर की समाजवादी क्रान्तियों के व्यावहारिक अनुभवों ने इस लचर तर्क को खोखला ही साबित किया।

दरअसल, उत्पादन के वितरण की असमानता के कारण आम लोगों की जरूरतें पूरी नहीं हो पाती हैं। प्राकृतिक संसाधन तो प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। समुद्र की अतल गहराइयों में मौजूद प्राकृतिक संसाधनों के संश्लेषण से भविष्य में बेहतरीन किस्म के खाद्य पदार्थ बनाकर समूची मानवता तक इसका लाभ पहुंचाया जा सकता है। लेकिन उत्पादक शक्तियों के विकास के अभाव में वहां तक नहीं पहुंचा जा सका है या यूं कहें कि उत्पादक शक्तियां वहां ज्यादा कारगर हैं, जहां मुनाफा है। उत्पादन-सम्बन्ध जड़ हो चुके हैं और उत्पादन शक्तियों को सामाजिक हित में इस्तेमाल करने के लिये क्रांतिकारी परिवर्तन की मांग कर रहे हैं।

एक ओर, पूंजीवादी व्यवस्था कृषि एवं उद्योग जैसे उत्पादक क्षेत्रों में तो कम से कम निवेश कर रही है, वहीं दूसरी ओर नये-नये उपभोक्ता सामानों, शेयर, सट्टे, विज्ञापनों, हथियारों आदि जैसे अनुत्पादक क्षेत्रों में पैसा पानी की तरह बहा रही है क्योंकि इसमें ज्यादा नफा है। आज जरूरत है उत्पादन सम्बन्धों में एक क्रांतिकारी परिवर्तन की और समाजवादी अर्थव्यवस्था लागू करने की जिसके केन्द्र में इन्सान हो न कि मुनाफा। इसलिये जनसंख्या के खोखले व बेतुके तर्क की असलियत को कदम-कदम पर तार-तार करना होगा।

● **रा.कु.**

ईस्टर प्रबन्धन ने मजदूरों पर दबाव बढ़ाया

आत्मदाह नहीं, एकजुट संघर्ष की राह चुनो!

बिगुल संवाददाता

खटीमा (ऊधमसिंह नगर)। स्थानीय ईस्टर इण्डस्ट्रीज लि. के प्रबन्धन ने मजदूरों पर दबाव बढ़ाने के लिए बन्द पड़े यार्न प्लांट के दो और मजदूरों का अवैधानिक रूप से नोएडा व दिल्ली स्थित गोदाम व हेड आफिस में स्थानान्तरण कर दिया था। फिलहाल स्थानान्तरित किये गये दो मजदूरों में से एक देवकीनन्दन पपनै ने गेट पर आत्मदाह की धमकी दे दी, जिससे स्थिति बेहद नाजुक बनी हुई है। इधर प्रबन्धन कारखाने की मुख्य यूनियन से वार्ता के लिए तैयार नहीं है और यार्न प्लाण्ट बेचने पर आमादा है। जबकि उप श्रमायुक्त ने फिलहाल वार्ता के बगैर बिक्री पर रोक की नोटिस जारी कर दी है।

उल्लेखनीय है कि यहां लगभग ढाई वर्ष पूर्व मजदूर आन्दोलन की असफलता के बाद से प्रबन्धन मजदूर वर्ग पर पूरी तरह से हावी हो चुका है। कारखाने में दो यूनियनों की मौजूदगी का फायदा उठाते हुए इन ढाई वर्षों में उसने अब तक 100 से ज्यादा मजदूरों को बाहर का रास्ता दिखा दिया है, उत्पादकता काफी बढ़ा दी है और पूरे यार्न प्लाण्ट को पिछले 15 महीने से बन्द करके यहां के मजदूरों को बैठाकर वेतन देते हुए उनका लगातार मानसिक उत्पीड़न कर रहा है। चार माह पूर्व प्रबन्धन ने तथाकथित वीआरएस स्कीम के महत इस प्लांट के 51 में से 14 मजदूरों की छुट्टी कर दी। यह अवैधानिक स्थानान्तरण वह इसी गरज से कर रहा है ताकि अब तक संघर्ष में डटे यार्न के मजदूर अपना हिसाब लेकर यहां से खिसक लें और फिर वह दूसरे प्लांटों में छंटनी का क्रम तेज कर दे। कारखाने के महाप्रबन्धक ने तो 60 और मजदूरों की छंटनी की घोषणा तक कर दी है।

कारखाने में 31 मई को पिछले त्रिवर्षीय वेतन समझौते का समय भी समाप्त हो गया। नये वेतन समझौते के लिए यूनियन द्वारा मांगपत्रक देने के बावजूद प्रबन्धन कारखाने की मुख्य यूनियन से वार्ता को भी तैयार नहीं है। उसने तो सीधे ज्ञापन तक लेने से इन्कार कर दिया। दरअसल यह ज्ञापन 'ईस्टर इण्डिया इम्पलाइज यूनियन' द्वारा विगत 29 मई को आयोजित आम सभा में पारित होने के बाद प्रबन्धन के पास भेजा गया था। इस सभा में प्रबन्धन द्वारा मजदूरों को रोकने की तमाम कवायद के बावजूद बहुसंख्या में देर रात तक मजदूरों की मौजूदगी से प्रबन्धन की बौखलाहट थोड़ी बढ़ गयी है। मांगपत्रक में यार्न प्लांट को रोकने, छंटनी पर रोक लगाने, अवैध निलम्बन-निष्कासन वापस लेने, उत्पीड़न बन्द करने सहित वेतन-भत्ते-सहूलियतों में बढ़ोत्तरी की मांग की गयी है। उधर कारखाने की दूसरी यूनियन से प्रबन्धन आनन-फानन में समझौता करने को तत्पर है, लेकिन इस यूनियन को मजदूरों का बहुमत मान्यता देने को तैयार नहीं है, क्योंकि इस पर उन्हें बिल्कुल भरोसा नहीं है।

ईस्टर की स्थिति लगातार संगीन बनी हुई है और मजदूर भी इस स्थिति के मद्देनजर एकजुट हो रहे हैं। ऐसे में यूनियन नेतृत्व को सूझ-बूझ भरे कदम उठाते हुए आन्दोलन को क्रमशः तेज करना होगा। आत्मदाह संघर्ष का कोई रास्ता नहीं होता है। रास्ता तो एक ही है-एकजुट संघर्ष का रास्ता।

दुःख का बादल तुम्हें घेर ले
तुम्हारे लिए यह शर्म की बात है
तुम्हारा शरीर यदि शिथिल पड़ जाये
तुम्हारे लिए यह शर्म की बात है
पतझड़ के नंगे वृक्ष की तरह
जिन्दा रहो
कठोर जमीन को तोड़कर
उगते अंकुर की तरह
जीवन का स्पन्दन पैदा करो।
-जोस दि दिएगो

माँ-बाप की लाठी बनें या पढ़ें

(पेज 2 से आगे)

इसके बाद वह मेरी तरफ मुखातिब हुई और बोली मास्टर जी, अब आप ही बताइये ये कमायेगा नहीं तो खायेगा क्या। आठ साल की उम्र हो गयी आखिर कब तक बैठ कर खायेगा। यही तो तेजी से बाँधता है मैं तो इसकी मदद करती हूँ। हम दोनों मिलकर दिनभर में 22 फ्रेम गांछ लेंगे तो 100 रुपये खड़ा हो जायेगा। अब वह समय नहीं रहा जब दस रुपये एक फ्रेम का मिलता था अब तो घटते-घटते 4.50 रुपये ही एक फ्रेम का मिलता है। लेकिन यह बात इसके भेजे में नहीं समाती। अब आप ही बताइये भला इतना काम रोज-रोज मिलता है? इसके बाप को कभी काम मिलता है कभी नहीं मिलता। हम तीनों में अक्सर कोई न कोई खाली बैठा रहता है। इतना जुटा लेते हैं कि जोड़-बटोर कर लाला के राशन का, झुग्गी का किराया और डाक्टर का चुकता कर देते हैं। इसी में त्यौहार, कपड़ा-लत्ता सब देखना पड़ता है।

सोचा जा सकता है कि जहां जीने की शर्तें इतनी कड़ी हों, वहां पढ़ायी की गुन्जाइश निकालना या पढ़ने की सोचना कितना मुश्किल है। लेकिन बचपन बचाने की दुहाई देने वाली तमाम स्वयंसेवी संस्थाओं को इस जमीनी हकीकत से क्या लेना-देना। हकीकत यह है कि जब तक जिन्दा रहने के लिये अपने बच्चों के श्रम के सहारे रहना अभिभावकों की मजबूरी बनी रहेगी तब तक बाल श्रम खत्म करने की तमाम मुहिमें या तो धन्धेबाजी बनी रहेंगी या आदर्शवादी मूर्खताएं।

- जनार्दन
नोएडा, सेक्टर-8

सूदखोरों के चंगुल में...

(पेज 5 से आगे)

गलियों-चौराहों का क्या कहना उनके घरों में घुसकर मारपीट करते हैं।

यह स्थिति सिर्फ बनारस की ही नहीं बल्कि देश के हर शहर, कस्बे, गांव की है। इस लूटतंत्र का मकड़जाल मेहनतकश अवाम के जीवन में पोर-पोर में समाया हुआ है। औद्योगिक इलाकों में स्थिति और भी भयावह है। चाहे वह दिल्ली की परिधि पर बसे नोएडा, गुड़गांव, फरीदाबाद, बवाना, साहिबाबाद हों या मुंबई, कलकत्ता, लुधियाना-मेहनतकशों को काम की अनिश्चित परिस्थितियाँ जीने के लिये मजबूरन कर्जदार बनाती हैं। और यह व्यवस्था सूदखोरों को सूदखोरी करने के लिये वैधता प्रदान करती है। यह है हमारा दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा और मजबूत लोकतंत्र।

मनमोहनी नारों और ढपोरशंखी घोषणाओं के बीच...

(पेज 1 से आगे)

है। यानी देशी-विदेशी पूँजी के सभी नुमाइन्दों में इस बात पर एक आम राय बनी है कि भूमण्डलीकरण की आर्थिक नीतियों को अन्धाधुन्ध लागू करना विश्व पूँजीवादी तंत्र के लिये खतरनाक हो सकता है, इसलिये थोड़ा सा ब्रेक लगाते हुए जनता के सामने कुछ टुकड़े फेंकते रहा जाये। संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन (संप्रग) सरकार के न्यूनतम साझा कार्यक्रम में "मानवीय चेहरे के साथ भूमण्डलीकरण" लागू करने के वादे के पीछे का राज यही है।

संसदीय बातबहादुरों का असली चेहरा

सीपीआई, सीपीएम जैसी संसदीय वामपन्थी पार्टियों का नयी गठबन्धन सरकार को समर्थन भी लोकलुभावन घोषणाओं के पीछे एक कारण है, लेकिन यह गौण कारण है। इन संसदीय बातबहादुरों का भी भूमण्डलीकरण की नीतियों से मूलतः कोई विरोध नहीं है। ये भी भूमण्डलीकरण को सिर्फ "मानवीय" चेहरा देने के हिमायती हैं। इनकी चिन्ता महज इतनी है कि बचा-खुचा सामाजिक आधार खिसकने न पाये और पार्टी कतारों के बीच लाज बची रहे। कितना दिलचस्प संयोग है कि विश्व पूँजी की हिफाजत में जुटे पूँजीवादी विचारक और नौकरशाह तथा देश के संसदीय वामपन्थी बातबहादुर दोनों एक ही बोली बोल रहे हैं-भूमण्डलीकरण को मानवीय बनाओ! पूँजीवादी व्यवस्था की हिफाजत करने की इसी भूमिका को देखते हुए सीपीआई-सीपीएम जैसे नकली वामपन्थी पार्टियों (सामाजिक जनवादियों) को विश्व पूँजीवाद की दूसरी सुरक्षा पंक्ति कहा जाता हैं

ढपोरशंखी घोषणाएँ

नयी केन्द्र सरकार की लोक-लुभावन घोषणाएँ खालिस ढपोरशंखी घोषणाएँ है, इसका सबूत मंत्रियों ने कार्यभार सम्भालते ही दे दिया। अभी न्यूनतम साझा कार्यक्रम के पन्नों पर स्याही सूखी भी न होगी कि जहाजरानी मंत्री प्रफुल्ल पटेल ने हवाई अड्डों के निजीकरण की प्रक्रिया आगे बढ़ाने की घोषणा कर दी। वाजपेयी सरकार ने मामले को जहाँ छोड़ा था नयी सरकार ने ठीक वहीं से आगे बढ़ा दिया। फर्क सिर्फ इतना है कि विदेशी पूँजीनिवेश की सीमा को 74 प्रतिशत से घटाकर 49 प्रतिशत कर दिया गया है।

गुजरात दंगों के दोषियों को कड़ी सजा देने की घोषणाएँ भी कितनी खोखली हैं इसका अन्दाज महज इसी से लगाया जा सकता है कि केन्द्र सरकार में जगदीश टाइटलर जैसे लोगों को मंत्री बनाया गया है, जिनके ऊपर 1984 में सिखों के कत्लेआम के लिए उकसाने और योजना बनाने के आरोप हैं। साम्प्रदायिकता विरोध को महज भाजपा विरोध का पर्यायवाची बनाकर कॉंग्रेस को साम्प्रदायिकता विरोधी पार्टी का तमगा देने का कुकर्म भी सीपीआई-सीपीएम जैसे मजदूर वर्ग के फर्जी हिमायतियों ने ही किया है। भाजपा को सत्ता से दूर रखने को साम्प्रदायिकता विरोधी संघर्ष का पर्यायवाची बनाकर मजदूर वर्ग के इन गद्दारों ने चुनाव जीतने के लिए कॉंग्रेस पार्टी के साम्प्रदायिक हथकण्डों को लोगों के जेहन से बिसराने का काम किया है। पंजाब में भिण्डरांवाले को किसने खड़ा किया था? राममन्दिर का ताला किसने खुलवाया था? शिलान्यास किसने करवाया था? क्या हिन्दू वोटों को अपनी झोली में गिराने के लिए समय-समय पर हिन्दू कार्ड खेलने से कॉंग्रेस जरा भी परहेज करती रही है?

न्यूनतम साझा कार्यक्रम में यह भी घोषणा की गयी है कि सरकार अगले पाँच सालों तक हर साल गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले परिवारों के एक व्यक्ति को साल में सौ दिन का रोजगार देगी। मान लिया जाये कि काम के बदले अनाज जैसी योजनाओं के जरिये सरकार यह वादा पूरा भी कर ले तो इससे इन परिवारों की सेहत पर कितना फर्क पड़ने वाला है। साल के बचे हुए 265 दिनों में ये परिवार किस तरह गुजर-बसर करेंगे। यह सोचने की फुर्सत सरकार को कहाँ है? अगर सरकार नये रोजगार पैदा करने के बारे में सचमुच ईमानदार और गम्भीर होती तो वह सबसे पहले छँटनी-तालाबन्दी पर रोक लगाती, स्वैच्छिक अवकाश योजना पर रोक लगाती, ठेका प्रथा बन्द कराती और सबसे बढ़कर यह कि नये-नये उद्योग-धन्धे, स्कूल-अस्पताल खोलती और अन्य विकास योजनाओं के जरिये नये-नये रोजगार के अवसर पैदा करती। लेकिन सरकार की तो सबसे पहली चिंता पूँजीपतियों का मुनाफा बढ़ाने की है।

सरकार को अगर सचमुच गरीबों-वंचितों और श्रमिक वर्गों की चिन्ता होती तो वह श्रम कानूनों में बदलाव करके पूँजीपतियों के हाथ खुले करने वाली नीतियों को उलटने की दिशा में ठोस कदम उठाती। सरकार की इन मजदूर विरोधी चालों में केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें भी कुशलता से साथ दे रही हैं।। इन यूनियनों में सीपीआई-सीपीएम से जुड़ी एटक, सीटू जैसी यूनियनें भी शामिल हैं। इनकी चालबाजी यह है कि विरोध में हाथ भी उठा रहे और कॉंख भी न दिखायी दे। यही कारण था कि सरकार के साथ बैठक में इन ट्रेड यूनियनों ने श्रम कानूनों में पूँजीपरस्त बदलावों के खिलाफ कोई जोरदार आवाज नहीं उठायी। इनका सारा जोर संगठित क्षेत्र के मजदूरों-कर्मचारियों के बीच अपने आधार को बचाने के लिये था। भविष्य निधि की बयाज दर बढ़ाकर 12 प्रतिशत करने की माँग के पीछे यही चिन्ता प्रमुख रूप से काम कर रही थी।

पोटा को हटाने का वादा करना नयी सरकार की मजबूरी है। यह सर्वविदित तथ्य है कि अब तक पोटा का इस्तेमाल अधिकांशतः अल्पसंख्यक समुदायों पर ही ज्यादा हुआ है। कॉंग्रेस एक रणनीति के तहत अपने पुराने चुनावी आधार को फिर से वापस अपनी ओर करना चाहती है। यूँ अब तक जितनी बातें सामने आयी हैं उसके आधार पर यही लगता है कि सरकार पोटा हटाने की औपचारिक घोषणा भले ही कर दे पर उसका अमल इस ढंग से होगा कि पोटा के तहत दर्ज हो चुके मामले घिसटते रहें। टाडा खत्म हो जाने के बाद भी अभी सैकड़ों लोग इसके तहत जेलों में बन्द हैं और मुकदमे चल रहे हैं। पोटा अगर पूरी तरह खत्म भी हो जाये तो भी आतंकवाद और राष्ट्रविरोधी गतिविधियों के नाम पर राजकीय दमन का पाटा चलता रहेगा। राष्ट्रीय सुरक्षा कानून (रासुका), आवश्यक वस्तु सेवा अधिनियम(एस्मा) जैसे दमनकारी काले कानून फिर भी राज्य के पास बने ही रहेंगे।

झाँसे में मत आओ! संघर्ष की तैयारियाँ आगे बढ़ाओ!

निचोड़ यह कि मेहनतकशों को नयी सरकार की ढपोरशंखी घोषणाओं के झाँसे में कतई आने की जरूरत नहीं है। हमें समझना होगा कि पूँजीपतियों की सरकारों और उनके टुकड़ों पर पलने वाले रहनुमाओं द्वारा फेंके जाने वाले चन्द टुकड़ों से हमारी तबाही नहीं दूर होगी। मेहनतकशों की लूट पर कायम यह पूँजीवादी व्यवस्था जब तक कायम रहेगी तब तक हमारी तबाही-बर्बादी का सिलसिला थम नहीं सकता। हमें अपने संघर्ष के लक्ष्य को कभी आँखों से ओझल नहीं होने देना है। यह लक्ष्य है देशी-विदेशी पूँजी की लूट के राज को उखाड़ फेंकना और मेहनतकशों का राज कायम करना। जब मेहनतकश क्रान्तिकारी जनसंघर्षों के जरिये उत्पादन, राजकाज और समाज के समूचे ढाँचे पर अपना नियंत्रण कायम कर लेंगे तभी करोड़ों-करोड़ गरीबों-वंचितों के आँसू पोंछे जायेंगे। हमें इसी लक्ष्य की ओर आगे बढ़ते रहना है। अपनी तैयारियों को तेज कर देना है।

मजदूरों को काम से जबरिया रोका गैरकानूनी हड़ताल बताकर निकाल बाहर किया

बिगुल संवाददाता

नोएडा। ज्योति रबर उद्योग प्रा. लि. (ए-108, सेक्टर-5) के प्रबन्धतंत्र ने कम्पनी गेट पर नोटिस चस्पां कर 65 मजदूरों को काम से निकाल बाहर किया है। इन मजदूरों पर गैरकानूनी हड़ताल करने, गुण्डागर्दी करने और कम्पनी के सामानों को नुकसान पहुँचाने का आरोप लगाया गया है। जबकि मजदूरों ने इन आरोपों को झूठा व मनगढ़न्त बताया है। मजदूरों का कहना है कि उन्हें अपने वाजिब हकों के लिये आवाज उठाने की सजा मैनजमेण्ट ने दी है। मजदूरों ने बताया कि 28 मई की शाम तक सभी मजदूरों ने कम्पनी में विधिवत काम किया। 29 मई को सुबह रोज की तरह जब मजदूर कम्पनी पहुँचे तो उन्हें गेट के भीतर घुसने नहीं दिया गया। कारण पूछने पर गेटकीपर ने बताया कि मालिक का आदेश है।

मजदूर दिनभर गेट के बाहर बैठे रहने के बाद वापस चले गये। अगले दो दिन भी यही सिलसिला चला। मजदूर काम करने आते लेकिन उन्हें गेट के भीतर घुसने नहीं दिया जाता।

एक जून को जब मजदूर सुबह कम्पनी पहुँचे तो गेट पर एक नोटिस चस्पाँ मिला। इसमें मजदूरों से गैरकानूनी हड़ताल खत्म कर दो दिनों के भीतर काम पर वापस आने के लिये कहा गया था। ऐसा न होने पर कार्यमुक्त कर देने की बात लिखी गयी।

मजदूर रोज कम्पनी के गेट पर बैठकर भीतर जाने के लिये कहते रहे लेकिन उन्हें भीतर नहीं जाने दिया गया। आखिरकार पाँच जून को प्रबन्धन ने गेट पर 65 मजदूरों के नाम एक आरोप पत्र चस्पाँ कर उन्हें काम से निकाल बाहर किया गया।

निकाले गये सभी मजदूर 10 वर्षों से अधिक समय से कम्पनी में काम कर रहे थे। इनमें कुछ मजदूर तो कम्पनी खुलने के समय से काम कर रहे हैं। मालिकान की इस कार्रवाई की सूचना मजदूरों ने उपश्रमायुक्त को दी तो उन्होंने दोनों पक्षों को सात जून को बातचीत के लिये आने को कहा। मजदूर तो वार्ता के लिये पहुंचे लेकिन मालिकान की ओर से कोई नहीं पहुंचा। फिलहाल उपश्रमायुक्त ने मामले को सिटी मजिस्ट्रेट के सुपुर्द कर दिया है। रिपोर्ट लिखे जाने तक यह नहीं पता चल सका है कि सिटी मजिस्ट्रेट ने मामले को सुलझाने के लिये क्या किया?

इस सम्बन्ध में इस संवाददाता ने प्रबन्धन का पक्ष जानने की कोशिश की लेकिन सम्पर्क नहीं हो पाया। प्रबन्धन की इस कार्रवाई को मजदूर एक साजिश बताते हैं। उनका कहना है कि कुछ दिन पहले मजदूरों ने त्रिवर्षीय समझौता नये सिरे से करने और कुछ अन्य माँगों के लिये प्रबन्धन को माँग पत्र दिया था। प्रबन्धन मजदूरों के वाजिब हकों को देना नहीं चाहता इसलिये उसने साजिश रचकर झूठे आरोप लगाकर उन्हें निकाल बाहर किया।

कम्पनी में बारह वर्षों से काम कर रहे एक मजदूर ने बताया कि मालिकान ने फर्जी हड़ताल दिखायी है। हमने हड़ताल की ही नहीं। हम तो काम करना चाहते थे और अब भी काम करना चाहते हैं।

अब देखना यह है कि श्रम विभाग या प्रशासन मजदूरों को न्याय दिला पाता है या नहीं। पिछले दस-बारह सालों का अनुभव तो यही बताता है कि मालिकों की अन्धेरगर्दी के सामने श्रम विभाग नाकारा ही साबित हुआ है। जब सरकार से लेकर न्यायपालिका तक खुलेआम पूंजी की पैरोकारी में जुटे हों तो फिर श्रम विभाग भला क्यों पूँजी के हितों के आड़े आये।

कम्पनी के मजदूर अपने वाजिब हकों की लड़ाई को कितना आगे बढ़ा पायेंगे यह भी एक सवाल है। एक कारखाने के भीतर सिमटी लड़ाइयाँ नाकामयाबियों में ही खत्म होती रही हैं। पिछले कुछ सालों का तजुर्बा तो यही बताता है। लेकिन बिना लड़े हारने से तो अच्छा है लड़कर हारना।

फाइलों में दम तोड़ती एक गरीब की अर्जी

बिगुल संवाददाता

नोएडा। गरीबी उन्मूलन और स्वरोजगार के नाम पर सरकार कई ढपोरशंखी योजनाएं तो घोषित कर देती है लेकिन जमीनी सच्चाई यह है कि गरीब और जरूरतमंद लोगों तक उसका लाभ शायद ही कभी पहुँच पाता है। इसे गरीबों के साथ एक भद्दा मजाक ही कहा जायेगा कि समाज के सुखी सम्पन्न तबके ऐसी योजनाओं का लाभ बटोर लेते हैं।

आज भी उनकी फाइल ब्लॉक कार्यालय की धूल चाट रही है।

जब बिगुल संवाददाता ने बिसरख विकासखण्ड अधिकारी से बात की तो उन्होंने कोई स्पष्ट जवाब नहीं दिया। ब्लॉक अधिकारी का कहना था कि वह तो हैं ही जनसेवा के लिये। उन्होंने कहा कि जब तक बैंक अपने ऋण की वापसी को लेकर आश्वस्त नहीं हो जाता तब तक ऋण मिलना संभव नहीं है।

इस संवाददाता ने मामले की

प्रधानमंत्री रोजगार योजना की हकीकत

ऐसी ही एक घटना नोएडा के सेक्टर 9 की झुग्गी में रहने वाले श्री शंकरदास के साथ घटी। शंकर दास पेशे से मोची हैं। पिछले नौ महीनों से वह विकासखण्ड दफ्तर और बैंक के चक्कर काट रहे हैं। लेकिन स्वरोजगार योजना के तहत उनका लोन अभी तक पास नहीं किया गया है।

शंकर दास ने बताया कि प्रधानमंत्री रोजगार योजना के तहत 7 अक्टूबर, 2002 को उन्होंने अपना रोजगार शुरू करने की बाबत 25 हजार रुपये के ऋण की दरख्वास्त बिसरख ब्लॉक कार्यालय में जमा कराई थी। दरख्वास्त मंजूर करने का लालच देकर एक ब्लॉक कर्मचारी ने उनसे 500 रुपये भी ऐंठ लिये। शंकर दास के मुताबिक जानकारी के लिये सम्बन्धित बैंक के प्रबंधक से भी मुलाकात की। बैंक मैनेजर का कहना था कि उक्त फाइल यहाँ से पास हो चुकी है। अब जब ब्लॉक से सरकार से मिलने वाली सब्सिडी सम्बन्धी पत्र आ जायेगा तो रकम आवेदनकर्ता को दे दी जायेगी।

यह तो बस एक उदाहरण है। ऐसे न जाने कितने मामले फाइलों में दबकर दम तोड़ रहे हैं। जो आवेदक दबंग हैं या जो बैंक या ब्लॉक अधिकारियों की माँगें पूरी कर देते हैं उनकी फाइलें आसानी से निपट जाती हैं। जाहिर है कि गरीब और दबे-कुचले तबकों को जो अधिकार कागज पर मिले हैं उन्हें वास्तविकता में हासिल करना चाँद-तारे तोड़ लाने के बराबर है।

घाटा दिखाकर 51 मजदूरों की रोजी छीन ली

बिगुल संवाददाता

नोएडा। फेज दो स्थित सीडी प्लेयर बनाने वाली देश की प्रमुख कम्पनी सुपर कैसेट इण्डस्ट्रीज ने हाल ही में बिना किसी नोटिस या पूर्वसूचना दिये अपने 51 मजदूरों को काम से निकाल दिया।

मालिकान द्वारा मजदूरों को इस तरह काम से निकाल बाहर करने की यह पहली घटना नहीं है। नई आर्थिक नीतियों और बिखरे हुए मजदूर आंदोलन ने पूंजीपतियों का मनमानापन इस कदर बढ़ा दिया है कि उन की नजरों में मजदूरों की जिन्दगी की कोई कीमत नहीं है। कुछ समय पहले तक इस कम्पनी में 120 से अधिक मजदूर काम करते थे। इनमें से 68 लोगों को धीरे-धीरे किसी न किसी वजह से निकाल बाहर किया गया। बचे हुए 51 मजदूरों को जो पिछले 4 से 10 वर्षों से इस कम्पनी में काम कर रहे थे, एक सुबह बिना कोई नोटिस या पूर्वसूचना के काम पर आने से रोक दिया गया। जब मजदूरों ने इसका कारण जानना चाहा तो बताया गया कि कम्पनी घाटे में चल रही है। मैनजमेण्ट ने इन मजदूरों पर लगातार दबाव बाया कि वे नौकरी से इस्तीफा दे दें। प्रबंधन के इस मजदूरघाती फैसले से बौखलाये मजदूरों ने अपनी नौकरी बहाली के लिये धरना-प्रदर्शन का सहारा लिया। उन्होंने फेज-23 स्थित फैक्ट्री गेट पर धरना दिया। इस पर मैनेजमेण्ट के लोगों ने प्रदर्शन कर रहे मजदूरों को अपने सुरक्षा गार्ड से डराने-धमकाने की कोशिश की और जब बात नहीं बनी तो पुलिस बुला कर मजदूरों को प्रताड़ित किया गया।

अपने अधिकारों की रक्षा के लिये मजदूरों ने श्रम विभाग और प्रशासन का दरवाजा भी खटखटाया लेकिन जागते हुओं को भला कौन जगा सकता है! श्रम विभाग ने माना कि मालिकों ने कम्पनी बन्द करने से पहले उनसे कोई अनुमति नहीं ली।

फैक्ट्री प्रबंधकों से निराश होकर मजदूरों ने अपना रुख सेक्टर-16 स्थित कम्पनी मुख्यालय की ओर किया। उन्हें आश्वासन दिया गया कि उन्हें कम्पनी की अध्यक्षा सुधेश कुमारी से मिलाया जायेगा लेकिन बाद में यह कहा गया कि 'मैडम' दिल्ली से बाहर हैं। धरने पर बैठे मजदूरों को पुलिस ने अपने डंडे के जोर पर डराने की कोशिश की। मैनजमेण्ट मजदूरों पर लगातार इस बात का दबाव बना रहा थ कि वे इस्तीफा दे दें और अपना हिसाब ले लें।

जब बिगुल संवाददाता ने प्रबंधकों से संपर्क करने की कोशिश की तो कोई जिम्मेदार व्यक्ति फोन पर नहीं आया। हालाँकि, एक अधिकारी ने नाम न छापने की शर्त पर बताया कि सभी मजदूरों को हिसाब देकर इस मामले को निपटाया जा रहा है।

अंतिम रिपोर्ट मिलने तक 51 मजदूरों में से 37 ने इस्तीफा दे दिया था। कई मजदूरों को डराया-धमकाया गया और आपराधिक मामलों में फँसाने की धमकियाँ भी दी गई। मजदूरों में अधिकांश उड़ीसा, उत्तरांचल, बिहार, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश और जम्मू कश्मीर के थे। अपने घरों से हजारों मील दूर भुखमरी की कगार पर खड़े मजदूरों के लिए कोर्ट कचहरी का खर्च उठाना संभव नहीं था।

सुपर कैसेट इण्डस्ट्रीज की घटना में पुलिस-प्रशासन मूक दर्शक बना रहा। कहीं-कहीं तो पुलिस लुटेरे मालिकों की हिफाजत करती नजर आयी। सवाल उठता है हमारी लड़ाई किसी एक फैक्ट्री मालिक से है या फिर उन सबसे जो मजदूरों की मेहनत की लूट में अपना-अपना हिस्सा पा रहे हैं?

सुपर कैसेट इण्डस्ट्रीज के मजदूरों का यह हश्र पूंजी की संगठित शक्ति के सामने मजदूरों की बिखरी हुई ताकत की हार है। मजदूरों की यह हार भी उसी सिलसिले की एक कड़ी है जो पिछले दस-बारह वर्षों में अकसर देखने में आया है। कारखानों के भीतर सिमटकर रह जाने वाली मजदूरों की अधिकांश लड़ाइयों को हार का सामना करना पड़ा है। इन तमाम हारी हुई लड़ाइयों से फिलहाली तौर पर मजदूरों में भले हताशा-निराशा पैदा हो लेकिन दूरगामी तौर पर यह उनकी चेतना को बढ़ा रहा है। मजदूर साफ तौर पर यह देख रहे हैं कि उनकी लड़ाई किसी एक मालिक से नहीं वरन् मालिकों के समूचे तंत्र से है। इससे इस बात की सम्भावना पैदा होती है कि भविष्य में जब मजदूर आन्दोलनों का नया उभार सामने आयेगा तब उसमें शामिल मजदूर सिर्फ कुछ छोटी-मोटी आर्थिक रियायतों के लिये नहीं बल्कि पूँजी की व्यवस्था को नष्ट करने और एक नयी व्यवस्था को गढ़ने का सपना लिये मुटिठ्याँ तान रहे होंगे।

सूदखोरों के मकड़जाल में बेबस है जिनकी जिन्दगी

बिगुल संवाददाता

वाराणसी। भारतीय लोकतंत्र की महानता के नशे में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि असलियत में यह दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा लूटतंत्र है। इसकी जिन्दा मिसाल है बनारस जिले में चल रहा सूदखोरी का धंधा।

महज 15 रुपये में आप बेबस लोगों को लूटने का लाइसेंस पा सकते हैं, बशर्ते आप समाज के लंपट और दबंग पैसे वाले हों तथा आपने उल्टे-सीधे कुकर्मों से कुछ पूंजी इकट्ठा कर ली हो। अंग्रेजों के जमाने से चल रहा यह धन्धा 17 जुलाई, 1976 को कानूनी करार दे दिया गया था। जो काम विदेशी हुक्मरानों ने नहीं किया वह काम पूरी वफादारी से उनके देशी मानसपुत्रों ने कर दिखाया। 1976-77 में सैकड़ों लोगों ने लाइसेंस लिया। बनारस जिले में इस समय कुल 2636 लाइसेंसी साहूकार हैं।

देखने में यह धन्धा पेचीदा और जोखिम भरा है जिससे कम लोग ही इसका लाइसेंस लेते हैं, लेकिन सच्चाई यह है कि पूंजी कमाने का यह सबसे सुरक्षित और कमाऊ धंधा है। बस शर्त यह है कि आप लंपट, गुण्डे और छुटभइया नेता टाइप हों। सरकारी आँकड़ों के मुताबिक पिछले बरस 18 नये लोगों ने लाइसेंस लिया। खुद कर्जदारों को जोंक की तरह चूस लेने वाले सूदखोरों का कहना है कि बेईमानों और रंगबाजों की संख्या बढ़ने से इस धन्धे में खतरा बढ़ता जा रहा है। इस सूदखोरी की तबाही और सच्चाई का मंजर देखना और जानना हो तो बनारस के पटरी व्यवसायी तथा बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी (बीएचयू) के केंद्रीय कार्यालय स्थित स्टेट बैंक की शाखा के गेट पर हर महीने की पहली तारीख को चले जाइये। बीएचयू के चतुर्थ श्रेणी के 20-25 प्रतिशत कर्मचारी इनकी गिरफ्त में त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। इनकी पासबुक सूदखोरों ने जब्त कर रखी हैं। स्थिति यह है कि हर महीने की पहली तारीख को सूदखोर अपने कर्जदारों की पासबुक लिये हाजिर हो जाते हैं। कर्जदार पैसे निकालकर तुरंत इनके हवाले कर देता है।

यूँ तो साहूकारी अधिनियम में बैंक द्वारा निर्धारित दर पर लेन-देन का नियम है। प्रशासन अपेक्षा करता है कि साहूकार कर्ज पर नियमानुसार ब्याज वसूलें। कर्ज देने व लेने के समय कम से कम एक गवाह मौजूद हो। लेकिन होता यह है कि ज्यादातर मामलों में कोई पुराना कर्जदार ही जमानतदार होता है। कानून का उल्लंघन करने पर छह महीने का कारावास और पाँच हजार का जुर्माना मुकर्रर है। लेकिन हम सभी जानते हैं कि आँख पर पट्टी बाँधे तराजू पर तौला गया न्याय बिना कीमत दिये नहीं मिलता है। अनियमितता करने पर धारा-7 के तहत लाइसेंस निरस्त करने का प्रावधान भी है। लेकिन उन कर्जदारों से पूछिये जिनकी मजबूरियों और जरूरतों के हिसाब से चार, पाँच, आठ व दस प्रतिशत और कभी-कभी तो बीस प्रतिशत तक मासिक ब्याज दर से उन्हें लूटा जाता है। जरा सा चूँ करने पर तो कई सूदखोर

(पेज 4 पर जारी)

रपट

बनल देसी बिदेसी क यार बिरना, तोहके समझे लुटेरा गँवार बिरना

बिगुल संवाददाता

नोएडा। **देहाती मजदूर यूनियन, मऊ** की क्रान्तिकारी बिरहा टोली ने अपने दस दिन के दौर में नोएडा की विभिन्न झुग्गियों और मजदूरों के दूसरे रिहायशी इलाकों में लोकगीतों और बिरहा के जरिये क्रान्तिकारी चेतना का प्रचार-प्रसार किया। बिरहा टोली **बिगुल मजदूर दस्ता** और नवगठित **मजदूर भारत सभा** के बुलावे पर नोएडा आयी थी।

नोएडा की विभिन्न फैक्ट्रियों में काम करने वाली लगभग दस लाख मजदूर आबादी में से करीब आधी आबादी पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के भोजपुरिया इलाके से आयी है। इस कारण जहाँ भी यह कार्यक्रम आयोजित किया गया सैकड़ों की संख्या में मजदूर सुनने के लिये आये। बेहद चाव और दिलचस्पी के साथ उन्होंने भोजपुरी लोकगीतों एवं बिरहा का आनन्द उठाया। श्रोताओं की तन्मयता का आलम यह था कि लगभग सभी जगहों पर आयोजकों को स्वयं कार्यक्रम खत्म करने के लिए श्रोताओं से कहना पड़ा जबकि श्रोता अभी और सुनने के मूड में थे।

भोजपुरिया इलाके के लोग बखूबी जानते हैं कि भोजपुरिया लोकगीत और बिरहा वहाँ के जनमानस में आज भी कितनी गहराई तक पैठा हुआ है। अपनी जिन्दगी की पीड़ा और त्रासदी, खुशियाँ और उल्लास, इंसानी स्वाभिमान और इंसान की आजादी के लिये संघर्ष का जज़्बा-सब कुछ भोजपुरिया लोकगीतों और बिरहा की लोकशैली के जरिये बखूबी व्यक्त होता रहा है। चाहे सामन्ती जमीन्दारों के बर्बर शोषण-उत्पीड़न की दास्तान हो या अंग्रेजी राज के जोरो-जुल्म के खिलाफ बगावत की कहानियाँ-इन सभी को बिरहा के जरिये लोकगायक पुरबिया समाज में बेहद प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते रहे हैं। भिखारी ठाकुर जैसे कुछ लोक कलाकार तो इतने लोकप्रिय हुए कि उन्होंने लोकमानस में लोकनायकों जैसी प्रतिष्ठा अर्जित कर ली।

लोकगीतों और बिरहा की इसी लोकविधा के जरिये देहाती मजदूर यूनियन मऊ की बिरहा टोली पिछले एक दशक से क्षेत्र की मेहनतकश आबादी के बीच निरन्तर न केवल देशी-विदेशी पूँजी के शोषण को उजागर कर रही है वरन सच्ची आजादी हासिल करने के लिए मेहनतकशों को नयी समाजवादी क्रान्ति के लिये उठ खड़े होने का आह्वान भी कर रही है।

परम्परा के मुताबिक बिरहा टोलियाँ कार्यक्रम शुरू करने के पहले अपने-अपने इष्टदेवों की वन्दना किया करती हैं। लेकिन यूनियन की बिरहा टोली के गायक बिल्कुल अलग अन्दाज में कार्यक्रम शुरू करते हैं। वे मजदूर-किसान वन्दना से कार्यक्रम की शुरुआत करते हैं।

नोएडा की एक मजदूर बस्ती में कार्यक्रम प्रस्तुत करती देहाती मजदूर यूनियन, मऊ की क्रान्तिकारी बिरहा टोली

क्रान्तिकारी बिरहा टोली का नोएडा दौरा
एक दर्जन स्थानों पर कार्यक्रम प्रस्तुत
लोकगीतों व बिरहा के जरिए देशी-विदेशी पूंजी का शोषण उजागर किया
नई समाजवादी क्रान्ति के लिए मजदूरों का आह्वान

उदाहरण के लिये कुछ पंक्तियाँ देखिये :

नहीं, नहीं बिन्देस्वरी
नहीं, नहीं जगदम्ब
मानव का बेटा ही देता
मानव को आलम्ब
दुनिया ऐसी बावरी
पाथर पूजन जाये
घर की चकिया कोऊ न पूजे
जिसका पीसा सब खाये।

बिरहा टोली की जनगायिका समीक्षा ने अपने एक लोकगीत में भूमण्डलीकरण की असलियत को बखूबी उजागर किया। दो पंक्तियाँ देखिये-

बनल देसी-बिदेसी क यार बिरना
तोहके समझे लुटेरा गँवार बिरना

एक अन्य लोकगीत की दो पंक्तियाँ देखिये-

जबसे बिदेसियन से प्रेम गहराइल
देसवा उदास भइल चोरनी समाइल

समीक्षा ने 'पन्तनगर काण्ड' के बिरहा के जरिये देश के पूँजीवादी लोकतंत्र के खूनी चेहरे को असरदार ढंग से बेनकाब किया। यह बिरहा जनता पार्टी के शासन काल में 13 अप्रैल 1978 को पन्तनगर कृषि विश्वविद्यालय के फार्म में काम करने वाले खेत मजदूरों के आन्दोलन को बर्बरतापूर्वक कुचलने की घटना पर आधारित है। अपने जायज हकों की मांग करने वाले खेत मजदूरों पर पुलिस ने बर्बरता से गोलियाँ चलायी थीं जिसमें कई दर्जन मजदूर-कर्मचारी मारे गये थे और सैकड़ों घायल हुए थे। बर्बरता की इन्तेहां यह कि पुलिस ने अपने खूनी कारनामे को छुपाने के लिये मरे-अधमरे लोगों को गाड़ियों में भर गन्ने के खेतों में छुपा दिया था और मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगा दी थी ताकि मृतकों की शिनाख्त न हो सके। गौरतलब है कि अंग्रेजी राज में 1919 में जलियांवाला बाग की घटना भी 13 अप्रैल को घटी थी और जनरल डायर की देशी औलादों ने 13 अप्रैल के ही दिन 1978 में यह खूनी कारनामा अंजाम दिया। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि इन्दिरा गाँधी के आपातकाल के जोरो-जुल्म से आजिज जनता ने मार्च 1977 में हुए लोकसभा चुनाव में प्रचण्ड बहुमत के साथ जनता पार्टी को सत्ता में पहुँचाया था। इसे दूसरी आजादी का नाम दिया गया था पर पन्तनगर की घटना ने जल्दी ही साबित कर दिया कि जनता पार्टी का राज किसी भी मायने में कांग्रेसी शासन से कम नहीं था। इस पूरी घटना और उसमें छिपी राजनीतिक सच्चाई को बिरहा में सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया था।

समीक्षा द्वारा गाया गया 'खूनी पंजा' शीर्षक एक अन्य बिरहा भी लोगों ने काफी पसन्द किया। इसमें पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक गरीब किसान की जिन्दगी की पीड़ा और देश की तथाकथित प्रगति की असलियत को बेहद मार्मिक ढंग से उजागर किया गया था।

बिरहा टोली के दूसरे गायक श्रीकिसुन ने भी अपने एक लोकगीत के जरिये देश की आजादी के चरित्र पर सवाल उठाया-

गइलें बिदेसी आइल नवकी परणाली
देसवा में भइल जनतंत्र क बहाली
हमरे मुँहवा में लागल लगाम काहे हो
हमार देसवा आजाद हम गुलाम काहे हो

एक अन्य लोकगीत में चुनावी राजनीति और चुनावी नेताओं की असलियत को श्रीकिसुन ने इस तरह उजागर किया-

साम, दाम, दण्ड भेद नीतिया चलाइके
बनेलन बिधायक एमपी वोटर फँसाइके
कुर्सी के पाई देख भुललें करार हो
जबनिये से तीहा देलें, रंगुवा सियार हो

शहीदेआजम भगतसिंह के जीवन और विचारों पर आधारित 'भगत सिंह की वंशावली' बिरहा लोगों ने खूब सराहा। इसके साथ ही चुनावी पार्टियों की पोल खोलता बिरहा 'लड़के की चाह' और पूँजीवादी व्यवस्था के शिकंजे को उजागर करता बिरहा 'डकैत कौन' भी लोगों ने पसद किया।

बिरहा टोली के साज और कोरस का तालमेल भी प्रभावशाली रहा, खासकर लालू भाई के ढोलक की थाप ने लोगों को गदगद कर दिया। साथ ही सोना भाई व किशोरी की जोड़ी ने टेरी (कोरस) में जान डाल दी थी।

इस पर बहस हो सकती है कि आज के जीवन की जटिल सच्चाइयों को पुरानी लोकधुनों की तर्ज पर किस हद तक मुखर किया जा सकता है और उसकी सीमाएँ-सम्भावनाएं क्या-क्या हैं, लेकिन **देहाती मजदूर यूनियन** की बिरहा टोली के प्रदर्शन से यह जरूर संकेत मिलता है कि अगर रचनात्मकता और कल्पनाशीलता का समुचित तालमेल हो तो पुराने लोकरूपों का प्रभावी ढंग से पुनःसंस्कार किया जा सकता है। बेशक हूबहू दुहराव से काम नहीं चलने वाला है। जरूरत फिर से नया रूप देने की है और यह सृजनशीलता और वैज्ञानिक नजरिये के जरिये ही संभव है।

नई किताबें

परिकल्पना प्रकाशन

1. दोन की कहानियाँ	शोलोखोव	35.00
2. दुश्मन (नाटक)	मक्सिम गोर्की	35.00
3. एक तयशुदा मौत (उपन्यास)	मोहित राय	25.00
4. चम्पा और अन्य कहानियाँ	मदन मोहन	35.00
5. षड्यंत्ररत मृतात्माओं के बीच कात्यायनी (साम्प्रदायिकता विरोधी लेख)		25.00
6. रात अँधेरे की बारिश में (कविताएं)	कात्यायनी	15.00
7. इस रात्रि श्यामला बेला में (कविताएं)	सत्यव्रत	30.00
8. इन्तिफादा : फलस्तीनी कविताएं		30.00

भगतसिंह की पाँच पुस्तिकाएँ

9. क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा		5.00
10. मैं नास्तिक क्यों हूं और 'ड्रीमलैण्ड' की भूमिका		5.00
11. बम का दर्शन और अदालत में बयान		5.00
12. जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो		5.00
13. भगतसिंह ने कहा...(चुने हुए उद्धरण)		5.00
14. नौजवानों से दो बातें	पीटर क्रोपोटकिन	5.00

राहुल फाउण्डेशन

1. गोथा कार्यक्रम की आलोचना	मार्क्स	10.00
2. क्या करें?	लेनिन	30.00
3. वामपंथी कम्युनिज्म एक बचकाना मर्ज	लेनिन	15.00
4. गद्दार काउत्स्की	लेनिन	15.00
5. जनता के बीच पार्टी का काम	लेनिन	30.00
6. धर्म के बारे में	लेनिन	20.00
7. समाजवाद वैज्ञानिक तथा काल्पनिक	एंगेल्स	12.00
8. लेनिनवाद के मूलभूत सिद्धान्त	स्तालिन	15.00
9. माओ त्से-तुङ की रचनाएँ : प्रतिनिधि चयन (एक खण्ड में)		70.00
10. कम्युनिस्ट जीवनशैली और कार्यशैली के बारे में	माओ त्से-तुङ	40.00
11. सोवियत अर्थशास्त्र की आलोचना	माओ त्से-तुङ	35.00
12. महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति चुने हुए दस्तावेज और लेख (खण्ड 1)		35.00
13. इतिहास ने जब करवट बदली	विलियम हिण्टन	20.00
14. डब्ल्यूएसएफ : साम्राज्यवाद का नया ट्रोजन हार्स		50.00

पूरी पुस्तकसूची व पुस्तकें मंगाने के लिए सम्पर्क करें :

जनचेतना

• डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020 • काफी हाउस के पास, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8.30) • 29, यूएनआई अपार्टमेंट, सेक्टर-11, वसुंधरा, गाजियाबाद • जनचेतना ठेला, चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8.30) • जाफरा बाजार, गोरखपुर-273001 • 989, पुराना कटरा, यूनिवर्सिटी रोड, मनमोहन पार्क, इलाहाबाद • भदईपुरा (प्राइमरी पाठशाला के पास), रुद्रपुर, ऊधमसिंहनगर

email : janchetna@rediffmail.com

विशेष सामग्री

(उनतालीसवीं किस्त)

पार्टी की बुनियादी समझदारी

अध्याय -13

पार्टी सदस्यों के दाखिले की शर्तें और प्रक्रियाएँ

एक क्रान्तिकारी पार्टी के बिना मजदूर वर्ग क्रान्ति को कतई अंजाम नहीं दे सकता। लेनिन ने इस बात को बार-बार जोर देकर कहा था। स्तालिन और माओ ने भी बराबर इस बात पर जोर दिया और बीसवीं सदी की सभी सफल सर्वहारा क्रान्तियों ने भी इसे सच साबित किया।

लेनिन ने सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के सांगठनिक उसूलों का निर्धारण किया और इसी फौलादी सांचे में बोल्शेविक पार्टी को ढाला। चीन की पार्टी भी बोल्शेविक पार्टी की ही उत्तराधिकारी थी। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान, समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष का संचालन करते हुए माओ के नेतृत्व में चीन की पार्टी ने अन्य युगान्तरकारी सैद्धान्तिक उपलब्धियों के साथ-साथ लेनिनवादी सांगठनिक सिद्धान्तों को भी और आगे विकसित किया।

सोवियत संघ और चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए बुर्जुआ तत्वों ने सबसे पहले यही जरूरी समझा कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी का चरित्र बदल दिया जाये। हमारे देश में भी क्रान्ति का रास्ता छोड़ संसदीय रास्ते पर चलने वाली नामधारी कम्युनिस्ट पार्टियां मौजूद हैं। भारतीय मजदूर क्रान्ति को सफल बनाने के लिए भारत में भी सर्वहारा वर्ग की एक सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने का काम सबसे ऊपर है।

इसके लिए बेहद जरूरी है कि मजदूर वर्ग यह जाने कि असली और नकली कम्युनिस्ट पार्टी में क्या फर्क होता है और एक क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी कैसे खड़ी की जानी चाहिए।

इसी उद्देश्य से, फरवरी 2001 के अंक से हमने एक बेहद जरूरी किताब 'पार्टी की बुनियादी समझदारी' के अध्यायों का किस्तों में प्रकाशन शुरू किया है। यह किताब सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान पार्टी-कतारों और युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए तैयार की गई श्रृंखला की एक कड़ी थी। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस (1973) में पार्टी के गतिशील क्रान्तिकारी चरित्र को बनाये रखने के प्रश्न पर अहम सैद्धान्तिक चर्चा हुई थी, पार्टी का नया संविधान पारित किया गया था और संविधान पर एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। इसी नई रोशनी में यह पुस्तक एक सम्पादकमण्डल द्वारा तैयार की गई थी। मार्च, 1974 में पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, शंघाई से इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की 4,75,000 प्रतियां छपीं। यह पुस्तक पहले चीनी भाषा से फ्रांसीसी भाषा में अनूदित हुई और 1976 में प्रकाशित हुई। फिर नार्मन बेथून इंस्टीट्यूट, टोरण्टो (कनाडा) ने इसका फ्रांसीसी से अंग्रेजी में अनुवाद कराया और 1976 में ही इसे प्रकाशित कर दिया। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद मूल पुस्तक के इसी अंग्रेजी संस्करण से किया गया है।

-सम्पादक

पार्टी सदस्यों के दाखिले की प्रक्रियाएँ

नए सदस्यों का दाखिला बेहद गम्भीर राजनीतिक और सांगठनिक कार्य है। पार्टी सदस्यता के लिये आवेदन की प्रक्रियाओं से सख्ती के साथ गुजरना सदस्यता के गुण और संगठन की शुद्धता को सुनिश्चित करने की पहली महत्वपूर्ण शर्त है। एक सक्रिय तत्व के लिये, जो पार्टी में दाखिला चाहता है, दाखिले की प्रक्रियाओं से गुजरना परीक्षित और प्रशिक्षित होने का एक तरीका है। इसलिये पार्टी की दाखिला-सम्बन्धी औपचारिकताओं को पूरा करना पार्टी संगठन के साथ-साथ उसमें दाखिला लेने के लिये आवेदन करने वाले लोगों के लिये भी महत्वपूर्ण रूप से उल्लेखनीय है। पार्टी संविधान के अध्याय 2 का अनुच्छेद 2 उल्लेख करता है कि : "पार्टी सदस्यता के आवेदकों को प्रवेश की प्रक्रिया से वैयक्तिक तौर पर ही गुजरना चाहिए। एक आवेदक की दो पार्टी सदस्यों द्वारा सिफारिश होनी चाहिये, उसे एक आवेदन फार्म भरना होगा और वह पार्टी शाखा द्वारा निरीक्षित होना चाहिये, जिसे पार्टी के अन्दर और बाहर व्यापक जनसमुदायों की रायों को जानने का प्रयास करना चाहिए। आवेदन को पार्टी शाखा की सामान्य सदस्यता बैठक द्वारा स्वीकार और अगली उच्चतर पार्टी कमेटी द्वारा अनुमोदित होना होता है।"

पार्टी संविधान में रेखांकित सिद्धान्तों के अनुरूप, कोई व्यक्ति जो पार्टी में शामिल होता है उसे निम्नलिखित औपचारिकताओं को पूरा करना ही चाहियेः

1. उसे खुद अपनी पहल पर पार्टी में दाखिला पाने के लिये अपना आवेदन लिखना चाहिये। अपना आवेदन लिखने में उसे पार्टी के बारे में अपनी जानकारी , दाखिला पाने को प्रेरित करने वाली भावनाओं और अपने भविष्य के इरादों के बारे में पार्टी संगठन को बताना होगा। साथ ही, उसे अपने परिवार की बुनियाद, संघटन और राजनीतिक इतिहास और उसके मुख्य सामाजिक सम्बन्धों के बारे में पार्टी संगठन को स्पष्टता के साथ बताना होगा। कुछ कॉमरेड, इस डर से कि पहली गुजारिश में उनका आवेदन स्वीकृत नहीं होगा, जिससे वे शर्मसार हो जाएंगे, बहुत घबरा जाते हैं और उनकी आवेदन भरने की ही हिम्मत नहीं पड़ती। इस तरह से सोचना गलत है। पार्टी में दाखिला पाने की इच्छा करना ऐसा मामला है जिसमें हमें खुला और खरा होना चाहिए, और अगर हम पहली गुजारिश पर नहीं भी स्वीकृत होते, तो इसमें "शर्मसार होने" की कोई बात नहीं है। अगर हम नहीं स्वीकृत होते तो इसके पीछे कई कारण हो सकते हैं। अगर संगठन यह बताता है कि कोई कॉमरेड अभी प्रवेश की सभी शर्तों को पूरा नहीं करता, तो भी सचेतन तौर पर खुद को मजबूत बनाने के लिये संघर्ष करके और आगे भी आवेदन देकर दाखिला पाना संभव है। ऐसे कॉमरेड भी होते हैं जो सोचते हैं कि चूंकि नए पार्टी सदस्यों को स्वीकार या अस्वीकार करना संगठन द्वारा तय किया जाता है, अगर वे प्रवेश की शर्तें पूरी करते हैं, तो कोई उन्हें खुद हाथ पकड़कर ले जाने आयेगा, और इसलिये आवेदन करने के लिये पहल लेना बेकार है। जाहिर तौर पर यह दृष्टिकोण गलत है। किसी को प्रवेश देने का फैसला पार्टी संगठन द्वारा लिया जाता है जो यह जांचता है कि वह व्यक्ति पार्टी में प्रवेश की शर्तें पूरी करता है या नहीं; पार्टी में दाखिला पाना स्वैच्छिक, व्यक्तिगत और सचेतन इच्छा का मामला है। एक व्यक्ति जो कम्युनिज़्म के उद्देश्य के लिये लड़ने को अपना जीवन समर्पित करने की चाहत रखता है निश्चित तौर पर ऐच्छिक रूप से पार्टी में दाखिला पाने का अपना फैसला और उम्मीद पार्टी संगठन के सामने अभिव्यक्त करेगा। इस प्रकार आवेदन करने का स्वैच्छिक फैसला एक कॉमरेड की चेतना के स्तर को दर्शाता है।

2. उसकी दो पार्टी सदस्यों द्वारा सिफारिश होनी चाहिये। उन दो प्रायोजकों को स्वयं उस व्यक्ति द्वारा भी चुना जा सकता है और उन्हें पार्टी द्वारा भी नियुक्त किया जा सकता है। जब उन्हें स्वयं प्रत्याशी द्वारा चुना जाता है, तो सबसे अच्छा होता है कि उन पार्टी सदस्यों को ढूंढा जाये जो एक ही इकाई के हों और उसे अच्छी तरह जानते हो। सभी व्यक्तियों को जो पार्टी में दाखिल होने की इच्छा रखते हैं, अपने प्रायोजकों को अपनी सामान्य स्थिति बताते रहना चाहिए, अक्सर अपनी वैचारिक स्थिति और उनके काम में उनकी स्थिति का समाहार करते रहना चाहिए, और उनके निर्देशों और सहायता को स्वीकार करना चाहिए। कम्युनिस्ट पार्टी का कोई सदस्य जो एक नए सदस्य की सिफारिश करता है, वह पार्टी संगठन और साथ ही साथ उस व्यक्ति के प्रति जिसकी वह सिफारिश कर रहा होता है, एक महत्वपूर्ण जिम्मेदारी का निर्वाह करता है। दूसरी ओर, उसके गंभीरतापूर्वक और सचेतन तौर पर वर्ग संघर्ष, दो लाइनों के संघर्ष और सर्वहारा अधिनायकत्व के अंतर्गत क्रांति को जारी रखने, उसकी राजनीतिक अवस्थितियों, पारिवारिक हालात, सामाजिक अतीत, विचारधारा, कार्यशैली, साथ साथ पार्टी सदस्यता के लिये आवेदन करने के पीछे उसके इरादों के लिहाज से उस कॉमरेड की चेतना के स्तर की जांच करना चाहिये। इसके अलावा, उसे अपनी जांच-पड़ताल के नतीजों को पार्टी संगठन को बिना गोलमाल की भाषा के और अपनी ओर से कुछ छुपाए बिना एक सटीक रिपोर्ट पार्टी संगठन को सौंपनी चाहिए। दूसरी ओर, उसे उस व्यक्ति के साथ प्रचार और शैक्षणिक कार्य करना चाहिए जिसकी वह सिफारिश कर रहा होता है ताकि वह उसे पार्टी की एक बुनियादी समझदारी दे सके, वर्ग संघर्ष और दो लाइनों के संघर्ष की उसकी चेतना का स्तरोन्नयन कर सके, पार्टी में दाखिला होने पर एक सही रुख अपनाने में उसकी मदद कर सके ताकि वह वैचारिक मोर्चे पर सबसे पहले और सर्वोपरि तौर पर इस सही रुख को अपनाता रहे। उस कॉमरेड के प्रवेश के बाद भी जितना सम्भव हो उसे सिखलाना और उसकी सहायता करना जारी रखना चाहिए।

3. पार्टी में दाखिला चाहने वाले व्यक्ति को पार्टी सदस्यता के लिए एक लिखित आवेदन फॉर्म भरना चाहिए। यह फॉर्म पूरे विस्तार और ईमानदारी के साथ भरा जाना चाहिए। आवेदन को सूत्रबद्ध करने में उसे पार्टी के प्रति वफादार और संजीदा होना चाहिए, अपने वर्ग उद्गम, अपने पारिवारिक उद्गम, राजनीतिक इतिहास और सामाजिक सम्बन्धों के बारे में, पार्टी में दाखिल होने के पीछे अपनी वजहों आदि के बारे में ठीक-ठीक बताना चाहिए। अगर उसका राजनीतिक इतिहास और उसके सामाजिक सम्बन्ध कुछ जटिल हैं, तो उसे उनके बारे में बहुत स्पष्टता के साथ बताना चाहिए, भले ही वह उनकी रिपोर्ट पहले ही दे चुका हो। सभी महत्वपूर्ण मुद्दों पर उसे प्रमाण का उल्लेख करना चाहिए ताकि संगठन आगे का परीक्षण और जांच कर सके। अगर वह लिख नहीं सकता तो उसे किसी पार्टी सदस्य से अपने लिए फॉर्म भरने को कहना चाहिए लेकिन उसे अपने हस्ताक्षर करना या निशान लगाना जरूरी है। कुछ कॉमरेड जिन्होंने कभी गलतियां की हैं, जिनका वर्ग उद्गम अच्छा नहीं है या जिनके सामाजिक सम्बन्ध जटिल हैं, वे अपना फार्म ठीक-ठीक भरने में इस डर से आनाकानी करते हैं कि जो तथ्य वे सामने लाएंगे वे पार्टी में दाखिल होने से उन्हें रोक देंगे; यह एक गलत दृष्टिकोण है। यह जानने के लिए कि इन सवालों का पार्टी में उसके दाखिले पर कोई फर्क पड़ता है या नहीं, उन्हें पार्टी और जनसमुदायों पर यकीन होना चाहिए जो निश्चित तौर पर सही नतीजा निकाल सकेंगे। राजनीतिक क्षेत्र में आगे बढ़ने को उत्सुक एक क्रान्तिकारी कार्यकर्त्ता में पार्टी के प्रति वफादार और संजीदा होने और झूठ न बोलने का राजनीतिक गुण होना चाहिए।

4. आवेदन को पार्टी की सामान्य सदस्यता बैठक द्वारा विचार-विमर्श के बाद मंजूरी मिलनी चाहिए और मंजूरी के लिए अगली उच्चतर पार्टी कमेटी के सामने इसे पेश किया जाना चाहिए। पार्टी शाखा कमेटी को एक सख्त जांच की ओर बढ़ना चाहिए और आवेदक के सम्बन्ध में बड़े पैमाने पर जनसमुदायों की राय जाननी चाहिए। उसके राजनीतिक अतीत, चेतना के स्तर काम करने के दौरान व्यवहार और पार्टी में दाखिले के पीछे प्रेरणाओं के बारे में स्पष्टीकरण लेने के बाद, शाखा कमेटी को अपनी राय देनी चाहिए और पार्टी शाखा की सामान्य सदस्यता बैठक के सामने पेश करना चाहिए जो विचार-विमर्श करेगी और तय करेगी कि आवेदन को स्वीकार किया जाए या नहीं। शाखा उसके बारे में जो विचार उसके सामने रखती है उसे सुनने के लिए, पार्टी सदस्यों और जनसमुदायों द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्नों का जवाब देने के लिए पेश होने और उसके द्वारा शिक्षित होने के लिए, आवेदक को पार्टी शाखा की सामान्य सदस्यता बैठक के विचार-विमर्श में मौजूद होना चाहिए। पार्टी शाखा की सामान्य सदस्यता बैठक द्वारा आवेदन मंजूर हो जाने के बाद, अगली उच्चतर पार्टी कमेटी द्वारा भी इसे सुनिश्चित किया जाना चाहिए। केवल तभी प्रवेश प्रक्रिया पूरी होती है।

(अगले अंक में जारी)

बोल्शेविक पार्टी का इतिहास

यह पुस्तक कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में मजदूर वर्ग द्वारा समाजवाद के लिए सफल संघर्ष और समाजवादी निर्माण के अनुभवों और सबकों का निचोड़ प्रस्तुत करती है। निम्न-पूँजीवादी पार्टियों-गुटों, सभी प्रकार के अवसरवादियों, आत्मसमर्पणवादियों, जनता के दुश्मनों और पार्टी के भीतर वामपंथी दुस्साहसवाद तथा दक्षिणपंथी अवसरवाद की प्रवृत्तियों के खिलाफ समझौताहीन संघर्ष चलाते हुए तपकर निखरी बोल्शेविक पार्टी का यह इतिहास हर देश के क्रान्तिकारियों के लिए एक प्रकाशस्तम्भ है।

पृ. 360 मूल्य : 80 रुपये

प्रतियों के लिए जनचेतना के केन्द्रों से संपर्क करें

हिन्दू धर्म के ठेकेदार फर्जीवाड़े में भी उस्ताद

सेवाकार्य की आड़ में विदेशों से भारी धनउगाही

दशानन (रावण) के तो सिर्फ दस सिर और बीस भुजाएँ ही थीं लेकिन हमारे हिन्दू धर्मध्वजाधारियों के कितने सिर और भुजाएँ हैं यह तो राम ही जानते हैं। इन धार्मिक कट्टरपंथी फासिस्टों का क्रूरतम चेहरा तो गुजरात नरसंहार के दौरान दिन के उजाले की तरह साफ हो चुका है। इसके बावजूद ऐसे लोगों की कमी नहीं जिनके, दिलो-दिमाग इनके जहरीले प्रचार से इतने जड़ हो चुके है कि इन्हें यह क्रूर चेहरा दिखायी नहीं देता। ऐसे लोगों से हमें कुछ नहीं कहना है।

अपने विचारों के विष वृक्ष को रोपने के लिये और अपने खूनी मंसूबों को अंजाम देने के लिए इन्हें देशी सेठ-साहूकारों से थैली मिलती ही रहती है। इसे तो सभी जानते हैं, लेकिन हाल ही में छपी रिपोर्टों के अनुसार विदेशों से धन उगाहने के जो तौर-तरीके इन्होंने इस्तेमाल किए हैं वे ये दिखलाते हैं कि ये धर्मध्वजाधारी फर्जीवाड़ा करने में भी उस्ताद हैं। यह चेहरा जल्दी इसलिए नहीं दिखायी देता क्योंकि इस पर सेवा कार्य का मुखौटा लगा हुआ है।

'आवाज' नाम की एक संस्था ने अपनी रिपोर्ट में इस धांधली का पर्दाफाश किया है। इस रिपोर्ट में बताया गया है कि हिन्दू स्वयंसेवक संघ से सम्बद्ध सेवा इंटरनेशनल ने प्राकृतिक आपदा के नाम पर करोड़ों रुपये इकट्ठा किये, जिसका इस्तेमाल राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने अपने सांगठनिक प्रसार के लिये किया। हिन्दू स्वयंसेवक संघ इंग्लैण्ड में आरएसएस की शाखा है। लोगों से चंदा बटोरते वक्त सेवा इंटरनेश्नल ने संघ के साथ अपने रिश्तों को छिपाया।

सेवा इंटरनेशनल के एक संरक्षक लार्ड पटेल के बयान आँख खोलने वाले हैं। लार्ड पटेल एक अनिवासी भारतीय हैं और इंग्लैण्ड की लेबर पार्टी की ओर से सांसद भी। बकौल पटेल-"मेरा विश्वास है कि कई दानदाताओं को इस बात का पता भी नहीं होगा कि उनकी सहायता का इस्तेमाल आरएसएस जैसे आतंकवादी संगठनों ने किया।"

रिपोर्ट के मुताबिक 1999 में उड़ीसा चक्रवात के हताहतों के नाम पर जमा की गई 2 लाख 60 हजार पाउंड (करीब दो करोड़ रुपये) की रकम का अधिकांश हिस्सा आरएसएस की एक प्रमुख संस्था उत्कल विपन्न सहायता समिति को दे दिया गया।

इसी तरह सन् 2001 में भूकंप सहायता के नाम पर एकत्रित 20 लाख पाउंड की रकम आरएसएस से सम्बद्ध सेवा भारती को दी गयी।

पुनर्वास कार्यक्रम के दौरान सेवा भारती ने आरएसएस की शाखाओं को शुरू कराया। जो कुछ राहत लोगों को पहुंचायी गयी उसमें से अधिकांश ऊँची जात वाले थे। आरएसएस ने राहत कैम्पों में भी शाखा आयोजित करायी। सेवा इंटरनेशनल द्वारा इकट्ठा की गयी राशि का लगभग एक चौथाई भाग आरएसएस द्वारा संचालित स्कूलों के लिये रख लिया गया।

इन धर्मध्वजाधारी दहशतगर्दों ने अन्य लोगों द्वारा किये जा रहे सहायता कार्यों में बाधा पहुँचायी। इन्होंने अन्य राहतकर्मियों पर विदेशों से पैसा लेने और ईसाइयत के प्रचार-प्रसार का आरोप लगा कर उन्हें डराय-धमकाया और क्षेत्र छोड़ने पर मजबूर कर दिया। सन् 2002 में छपी ऐसी ही एक रिपोर्ट से उजागर हुआ कि अमेरिका में आरएसएस द्वारा संचालित 'भारतीय विकास एवं राहत कोष' (इण्डियन डेवलपमेण्ट एण्ड रिलीफ फंड) किस तरह भारत में इन फासिस्ट ताकतों के लिये धन उगाही करता रहा है।

स्वदेशी धर्मध्वजाधारियों द्वारा सेवाकार्यों के नाम पर विदेशों से चन्दा उगाही करने की ये चन्द नजीरें हैं। असलियत की थाह पाना मुश्किल है। फिर भी अनुमान लगाने के लिये ये काफी हैं।

● ईश्वर

बजट : गाँव-किसान की दुहाई और मुनाफाखोरों को मलाई

(पेज 1 से आगे)

कृषि एवं ग्रामीण विकास की पोल

देशी-विदेशी बड़े पूँजीपतियों को फायदा पहुँचाने वाले इन अहम नीतिगत फैसलों के बाद अब जरा उन फैसलों पर भी एक नजर डाल ली जाये जो ग्रामीण विकास और किसानों के हितों पर खास ध्यान देने के नाम पर लिये गये हैं। पहला, ट्रैक्टर, डेयरी मशीनरी और कुछ अन्य कृषि उपकरणों पर से उत्पाद शुल्क पूरी तरह हटा दिया गया है। इससे इनकी कीमतें गिर जायेंगी। दूसरा, कृषि ऋण को अगले तीन सालों में बढ़ाकर दो गुना कर दिया जायेगा। बजट में कृषि उपज का दायरा बढ़ाने की पुरजोर वकालत करते हुए कहा गया है कि किसानों को गेहूँ, चावल पैदा करने की परम्परागत खेती के तंग दायरे से बाहर निकल कर बागवानी, फूलों और तिलहनी फसलों की खेती पर जोर देना चाहिए। इसके लिये राष्ट्रीय बागवानी मिशन बनाने और दुग्ध क्षेत्र की सहकारी संस्था 'आनन्द' की तर्ज पर राज्यस्तरीय बागवानी सहकारी सोसायटियाँ बनाने के फैसले लिये गये हैं। सरकार ग्रामीण क्षेत्र के ढाँचागत विकास के लिये 8000 करोड़ रुपये, सिंचाई परियोजनाओं के लिये 2800 करोड़ रुपये और जलाशयों के पुनरुद्धार के लिये 100 करोड़ रुपये की धनराशि आवण्टित करने का डंका भी खूब बजा रही है। चिदम्बरम के बजट की यही घोषणाएं हैं जिन्हें ऐतिहासिक बताते हुए एक नये युग की शुरुआत बताया जा रहा है।

वित्तमंत्री महोदय! गाँव और किसानों के बारे में रूमानी धारणाओं के शिकार शहरी मध्यवर्ग के लोगों को तो इन ढपोरशंखी घोषणाओं से भरमाया जा सकता है लेकिन जिन्हें भारत के ग्रामीण इलाकों की जमीनी हकीकत की जानकारी है उन्हें उल्लू नहीं बनाया जा सकता। पहली बात तो यह कि पिछले 57 सालों में भारत के गाँवों में जो पूँजीवादी विकास हुआ है उससे किसान आबादी के बीच विभेदीकरण की प्रक्रिया तेजी से आगे बढ़ी है। आज गाँवों में मुख्यतः तीन तरह के किसान मौजूद हैं। एक, जो मुनाफे की खेती करते हैं। यह ग्रामीण भारत का नया शासक पूँजीपति वर्ग है। दूसरे, मध्यम किसान, जो खेती में पूँजी लगाने की समस्या से पीड़ित है। इनकी खेती घाटे का सौदा होती जा रही है। तीसरे, गरीब किसान, जिनकी स्थिति खेतिहर मजदूरों या ग्रामीण सर्वहाराओं से किसी मायने में बेहतर नहीं है। इन्हें ग्रामीण अर्धसर्वहारा कहा जा सकता है।

ग्रामीण भारत की इस सच्चाई के आइने में बजट प्रस्तावों की असली तस्वीर उभरकर सामने आ जाती है। ट्रैक्टर और डेयरी मशीनरी कौन किसान खरीदेगा? जाहिर है मुनाफाखोर किसान। किसी तरह जोड़-जुगत भिड़ाकर अगर मध्यम किसान इन्हें खरीदता भी है तो कर्ज के मकड़जाल में वह इस कदर फँसता है कि बाहर निकलना लगभग नामुमकिन हो जाता है। गेहूँ, धान की परम्परागत खेती को छोड़कर बागवानी, फूलों और तिलहनी फसलों की खेती करने का जोखिम भी मंझोला किसान खुद को पूरी तरह जोखिम में डालकर ही ले सकता है। गरीब किसान तो इस बारे में सपने में भी नहीं सोच सकता। कृषि ऋणों की असलियत भी यही है। अगर पैटर्न देखा जाये तो कृषि ऋण का अधिकांश मुट्ठीभर धनी किसान ही हस्तगत करते हैं।

ग्रामीण क्षेत्र के ढाँचागत विकास, सिंचाई परियोजनाओं आदि मदों में जो धनराशि आवण्टित हुई है उनसे जो भी विकास होगा उसका अधिकतम लाभ भी गाँव के दबंग अमीर किसान ही उठाते हैं, इस जमीनी हकीकत को भी हमें नहीं भूलना चाहिए। गाँव की गरीब आबादी के लिये इस बजट में कुछ भी नहीं है। 'काम के बदले अनाज' योजना और 'अन्त्योदय अन्न योजना' से गरीब आबादी को जो मिलता है वह प्यास बुझाने के लिये ओस चटाने के बराबर है।

निचोड़ यह कि गाँव और किसान की ओर उन्मुख बजट गाँवों के मुट्ठीभर धनी किसानों फायदा पहुँचाने वाला और खेती का अधिकाधिक पूँजीवादीकरण करने की दिशा में केन्द्रित है। इसका एक अहम पहलू यह भी है कि गाँवों में औद्योगिक मालों की माँग को बढ़ाया जाये। पिछले दिनों ऐसे कई सर्वेक्षण आये हैं जिनमें शहरों में उपभोक्ता मालों की माँग में ठहराव और ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ोत्तरी का रुझान दिखाया गया है। सरकारी आर्थिक सर्वेक्षण में भी यह रुझान दिखाया गया है। जाहिर है कि बजट में गाँवों और किसानों के नाम पर की गयी घोषणाओं में पूँजीपतियों का मुनाफा बढ़ाने पर खास ध्यान दिया गया है।

स्वास्थ्य-शिक्षा की जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ा

वित्त मंत्री महोदय ने स्वास्थ्य और शिक्षा जैसे बुनियादी क्षेत्रों के महत्व पर बड़े भावुक अन्दाज में भाषण झाड़ा है। लेकिन इसके लिये जो घोषणाएँ की गयी हैं। उनकी असलियत यह है कि इनके जरिये राज्य के दायित्व से पल्ला झाड़ लिया गया है और इसका बोझ भी घुमा-फिराकर गरीब जनता के ऊपर ही डाल दिया है। बजट में शिक्षा के लिये सभी प्रत्यक्ष-परोक्ष करों पर 2 प्रतिशत उपकर लगाने की घोषणा की है। आयकर जैसे प्रत्यक्ष करों का बोझ तो सीधे करदाताओं पर पड़ेगा जिनके बारे में सरकार दलील दे रही है कि यह बोझ समृद्ध तबकों पर पड़ेगा। लेकिन उत्पाद शुल्क, सीमा शुल्क आदि परोक्ष करों का बोझ तो सीधे आम जनता पर ही पड़ेगा। इससे जो पैसा आयेगा उससे सर्वशिक्षा अभियान जैसे हवाई अभियानों के लिये रकम मुहैया करायी जायेगी। सबको अनिवार्य प्राइमरी शिक्षा उपलब्ध कराने के लिये नये स्कूल खोलने, शिक्षकों की नियुक्तियाँ करने या पहले से मौजूद प्राइमरी स्कूल की दशा सुधारने के लिये कुछ भी ठोस करने की घोषणा बजट में नहीं की गयी है।

सरकारी प्राविधिक संस्थानों (आईटीआई) का स्तर बढ़ाने के लिये सरकार ने मामूली धनराशि आवण्टित की है पर इसमें भी निजी क्षेत्र की भागीदारी के लिये आह्वान किया गया है। यह भी भूमण्डलीकरण के दौर में पूँजीपतियों की नयी जरूरतों को पूरा करने के लिये किया गया है। आईटीआई में अब तक ज्यादातर परम्परागत तकनीकी शिक्षा के पाठ्यक्रम ही चले आ रहे थे जो पूँजीपतियों की जरूरतों को पूरा करने के लिये नाकाफी थे। पूँजीपतियों को आज सस्ती दरों पर जो नये कुशल कारीगर चाहिये, सरकार का यह कदम उसी जरूरत को पूरा करने के लिये है।

आम आदमी को स्वास्थ्य सुविधा आसानी से उपलब्ध कराने के लिये नये अस्पताल खोलने या अन्य चिकित्सा सुविधाएँ सुलभ कराने का कोई कदम बजट में घोषित नहीं किया गया है। व्यक्तिगत स्वास्थ्य बीमा योजना और ग्रुप स्वास्थ्य बीमा योजना को ही थोड़ा नया रंगरोगन चढ़ाकर पेश किया गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में निजी अस्पताल खोलने वालों को करों में राहत दी गयी है। साफ है कि सबको सस्ती स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी से पूरी तरह पल्ला झाड़कर स्वास्थ्य सेवाओं के निजीकरण की दिशा में कदम और आगे बढ़ा दिये गये हैं।

मेहनतकश जनता पर महंगाई का बोझ

इस बजट की कई घोषणाएं ऐसी हैं जिनसे आम आदमी की रोजमर्रा के इस्तेमाल की चीजें महंगी हो जायेंगी। अकेले स्टील के उत्पाद शुल्क में बढ़ोत्तरी से बहुतेरी चीजें महँगी हो जायेंगी। सरकार ने रसोई गैस और मिट्टी के तेल की सब्सिडी में कोई बढ़ोत्तरी नहीं की है, इससे मौजूदा कीमतों में बढ़ोत्तरी होना लाजिमी है। गरीबों के आँसू पोंछने की दुहाई देने वाली सरकार ने खाद्यान्न सब्सिडी में कमी कर दी है। यह गरीबों के पेट पर लात मारने जैसा है। सर्विस टैक्स 8 प्रतिशत से 10 प्रतिशत कर दिये जाने का असर मध्यवर्गीय आबादी पर पड़ेगा। एक लाख रुपये की सालाना आय पर कर की जो छूट मिली है वह बराबर हो जायेगी। मोबाइल, कम्प्यूटर, प्लैटिनम जेवरात, डिब्बाबन्द मांस-मछली आदि जो चीजें सस्ती हुई हैं उनका इस्तेमाल खुशहाल मध्यवर्ग ही करता है। ये आज भी आम आबादी की पहुँच से बाहर ही हैं।

शहरी और ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों की असंगठित मजदूर आबादी के लिये बजट में एक शब्द नहीं कहा गया है। हर परिवार के एक सदस्य के लिये साल में 100 दिन रोजगार देने का जो ढिंढोरा सरकार पीट रही थी, बजट में उसका अमली रूप सिर्फ यह है कि देश के सिर्फ पाँच जिलों में इसे नमूने के तौर पर लागू किया जायेगा।

वोट बैंक को लुभाने की कवायद

बजट तैयार करते समय वित्त मंत्री महोदय ने आगामी कुछ महीनों के भीतर बिहार आदि राज्यों के विधानसभा चुनावों और अपने चुनावी जनाधार को भी ध्यान में रखकर रेवड़ियां बांटी है। बिहार के लिए 3225 करोड़ रुपये का पैकेज घोषित कराकर लालू प्रसाद ने सरकार को समर्थन की कीमत वसूल ली है। इसी तरह, अल्पसंख्यक विकास एवं वित्त निगम के लिए 50 करोड़ रुपये की धनराशि आवण्टित कर काँग्रेस ने अल्पसंख्यकों के बीच अपने खोये हुए जनाधार को वापस पाने की कवायद की है।

संसदीय कामरेड अपनी लाज कैसे बचायेंगे

संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन सरकार का पहला बजट संसदीय कामरेडों के अरमानों पर पानी फेर गया। बजट में न केवल तीन अहम क्षेत्रों में विदेशी निवेश की घोषणा की गयी बल्कि, पीपीएफ और जीपीएफ पर मिलने वाली ब्याज दरें भी नहीं बढ़ायी गयीं। असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों की दुर्दशा पर जार-जार आँसू बहाने वाले ये सरकारी कामरेड वित्तमंत्री से इस क्षेत्र के लिये कोई फर्जी घोषणा तक नहीं सुन सके। देखना है अब ये सरकारी कॉमरेड अपनी लाज कैसे बचाते हैं?

"संसदीय रास्ते का खंडन"

संसदीय रास्ते से समाजवाद लाने की वकालत करने वाले देश के संसदीय वामपन्थियों की वैचारिक जालसाजी और सर्वहारा वर्ग के ऐतिहासिक मिशन से विश्वासघात को बेनकाब करने वाला यह अंश एक ऐतिहासिक दस्तावेज से लिया गया है। 1956 में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की बीसवीं काँग्रेस में तत्कालीन पार्टी महासचिव निकिता ख्रुश्चेव ने "तीन शान्तिपूर्णों" (शान्तिपूर्ण संक्रमण, शान्तिपूर्ण प्रतियोगिता और शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व) की पैरवी कर सर्वहारा वर्ग की मुक्ति की विचारधारा मार्क्सवाद के बुनियादी सिद्धान्तों में फेरबदल कर उसे निर्जीव बनाने की गन्दी कोशिश की थी। उस समय सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी विचारधारा की हिफाजत करते हुए माओ त्से-तुङ के नेतृत्व में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी को पत्र लिखा। फिर दोनों पार्टियों के बीच विचारधारात्मक बहस छिड़ गयी थी जिसे 'महान बहस' के नाम से जाना जाता है। प्रस्तुत अंश इसी 'महान बहस' के एक दस्तावेज से लिया गया है। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी की ओर से 30 मार्च, 1963 को लिखे गये खुले पत्र की समीक्षा करते हुए नौ टिप्पणियां लिखी थीं। यह अंश 31 मार्च, 1964 को लिखी गयी आठवीं टिप्पणी से लिया गया है। - सम्पादक

" 'संसदीय रास्ते' के विचार का, जिसका दूसरी इण्टरनेशनल के संशोधनवादियों ने प्रचार किया था, लेनिन ने पूरी तरह खण्डन कर दिया था और वह काफी समय पहले ही बदनाम हो चुका था। लेकिन ख्रुश्चेव की नजर में, दूसरे विश्वयुद्ध के बाद संसदीय रास्ता अचानक फिर सही बनता दिखाई देता है।

क्या यह सच है? हरगिज नहीं।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद की घटनाओं ने बार-बार यह साबित कर दिया है कि पूंजीवादी राज्य-मशीनरी का मुख्य अंग सशस्त्र बल है, संसद नहीं। संसद तो महज पूंजीवादी शासन का आभूषण और आवरण है। संसदीय प्रणाली को अपनाना या ठुकराना, संसद को कम सत्ता देना या ज्यादा, किसी एक किस्म का चुनाव कानून बनाना या दूसरी किस्म का-इन सब विकल्पों को चुनते समय हमेशा पूंजीवादी शासन की जरूरतों और उसके हितों को ध्यान में रखा जाता है। जब तक इस फौजी-नौकरशाही मशीनरी पर पूंजीपति वर्ग का कब्जा रहेगा, तब तक या तो सर्वहारा वर्ग द्वारा "संसद में स्थायी बहुमत" प्राप्त करना ही असम्भव होगा, अथवा यह "स्थायी बहुमत" अविश्वसनीय साबित होगा। "संसदीय रास्ते" से समाजवाद की प्राप्ति बिलकुल असम्भव है और महज धोखा है।

...जब कोई मजदूरों की पार्टी पतन के गड्ढे में गिर जाती है और पूंजीपति वर्ग की चाकरी करने लग जाती है, तो यह हो सकता है कि पूंजीपति वर्ग उसे संसद में बहुमत प्राप्त करने की और सरकार बनाने की इजाजत दे दे। कुछ देशों की पूंजीवादी सामाजिक-जनवादी पार्टियों की हालत ऐसी ही है। लेकिन ऐसी हालत में सिर्फ पूंजीपति वर्ग के अधिनायकत्व की ही हिफाजत होती है और वही मजबूत होता है; इससे एक उत्पीड़ित और शोषित वर्ग के रूप में सर्वहारा की स्थिति न तो बदलती है और न बदली ही जा सकती है। ऐसे तथ्य संसदीय रास्ते के दिवालिएपन को ही साबित करते हैं।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद की घटनाओं से यह भी जाहिर होता है कि यदि कम्युनिस्ट नेता संसदीय रास्ते पर विश्वास करने लगें और "संसदीय जड़वामवाद" के लाइजाज मर्ज के शिकार हो गये, तो वे न सिर्फ कहीं के नहीं रहेंगे, बल्कि अनिवार्य रूप से संशोधनवाद की दलदल में जा फसेंगे, तथा सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी कार्य को बरबाद कर डालेंगे।

पूंजीवादी संसदों के प्रति सही रुख अपनाने के सम्बन्ध में मार्क्सवादी-लेनिनवादियों और अवसरवादियों-संशोधनवादियों के बीच हमेशा से बुनियादी मतभेद रहा है।

मार्क्सवादी-लेनिनवादियों का हमेशा से यह मत रहा है कि किसी खास परिस्थिति में सर्वहारा पार्टी को संसदीय संघर्ष में भी भाग लेना चाहिए तथा संसद के मंच को पूंजीपति वर्ग के प्रतिक्रियावादी स्वरूप का भंडाफोड़ करने के लिये, जनता को शिक्षित करने के लिये, और क्रान्तिकारी शक्ति संचित करने में मदद देने के लिये इस्तेमाल करना चाहिए। आश्यकता पड़ने पर, संघर्ष के इस कानूनी रूप का इस्तेमाल करने से इनकार करना गलत होगा। लेकिन सर्वहारा पार्टी को सर्वहारा क्रान्ति की जगह संसदीय संघर्ष को कभी नहीं देना चाहिए, अथवा इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए कि संसदीय रास्ते से समाजवाद में संक्रमण किया जा सकता है। इसे अपना ध्यान सदैव जन-संघर्षों पर केन्द्रित रखना चाहिए।

लेनिन ने कहा था :

क्रान्तिकारी सर्वहारा पार्टी को पूंजीवादी संसद-व्यवस्था में इसलिये हिस्सा लेना चाहिए, ताकि जनता को जगाया जा सके, और यह काम चुनाव के दौरान तथा संसद में अलग-अलग पार्टियों के बीच के संघर्ष के दौरान किया जा सकता है। लेकिन वर्ग-संघर्ष को केवल संसदीय संघर्ष तक ही सीमित रखने, अथवा संसदीय संघर्ष को इतना ऊंचा और निर्णयात्मक रूप देने कि संघर्ष के बाकी सब रूप उसके अधीन हो जाएं, का मतलब वास्तव में पूंजीपति वर्ग के पक्ष में चले जाना और सर्वहारा वर्ग के खिलाफ हो जाना है।

उन्होंने दूसरी इण्टरनेशनल के संशोधनवादियों की इस बात के लिए भर्त्सना की थी कि वे संसद-व्यवस्था के चक्कर में पड़े हुए हैं और राजसत्ता हथियाने के क्रान्तिकारी कार्य को तिलांजलि दे चुके हैं। उन्होंने सर्वहारा पार्टी को एक चुनाव लड़ने वाली पार्टी में, एक संसदीय पार्टी में, पूंजीपति वर्ग की पिछलग्गू पार्टी में, और पूंजीपति वर्ग के अधिनायकत्व की रक्षा करने वाले साधन के रूप में बदल दिया। संसदीय रास्ते की पैरवी करके ख्रुश्चेव और उसके अनुयायियों का भी महज वही अन्त होगा, जो दूसरी इण्टरनेशनल के संशोधनवादियों का हुआ था।..."

मेला : एक रिपोर्ट

नोएडा। मेला आम जन के लिए जरूरी है। उतना ही जरूरी जितना गीत-संगीत, जितनी किताबें, जितनी प्रकृति। एक ऐसा मेला जहां एक इन्सान सहज-स्वाभाविक मानवीय गरिमा और स्वाभिमान के साथ जिन्दगी के कुछ पल अपने जैसे हजारों इन्सानों के साथ साझा जी सके, कहाँ है? जैसे कि गीत-संगीत, साहित्य के नाम पर आम जन को बजबजाता जहरीला कचरा परोसा जा रहा है, वैसे ही मेले के नाम पर ऐसे आयोजन हैं, जहाँ आम जन को अपमान, अलगाव और अवसाद ही नसीब होता है। बाजार के काले नाग का जहर मेलों पर अमरबेलों की तरह फैला है। एक तरफ ऐसी प्रदर्शनियाँ या मेले हैं, जहाँ इंसान की नहीं, जेबों की, थैलियों की, पर्सों की वकत है। दूसरी तरफ, ऐसे धार्मिक मेले हैं, जहाँ धर्म के ठेकेदार मकड़े की तरह आम जन को अपने जाल में फांस कर अपना उल्लू सीधा करते हैं। ये आम जन को डराते हैं, भरमाते हैं कि तुम्हारे दुखों का कारण तुम्हारे पहले जनम के करम हैं, अपना भला चाहते हो तो परलोक को सुधारने के लिये हमारी शरण में आओ। इन ढोंगी, पाखण्डियों, पोंगापंथियों ने तो आज अपनी जकड़बन्दी को मजबूत कर आम मेहनतकश इन्सान की जिन्दगी को और तबाह कर डाला है।

क्या ये इन्सानियत के दुश्मन हमारी हर चीज हमसे छीन लेंगे? इतिहास से सबक लें तो कह सकते हैं कि पूंजी के राक्षस की लाख चाहत के बावजूद इंसान कभी भी मशीन नहीं बन सकेगा। मेहनतकश की न तो आत्मा को कुचला जा सकता है और न ही उसके आत्मिक सुखों को। वह अपने दुख के कारणों को भी समझेगा, वह रोटी का युद्ध भी करेगा और साथ ही राजसत्ता हासिल करने के लिये भी लड़ेगा। इन संघर्षों के दौरान वह अपने गीत भी गायेगा और अपने मेले भी सजायेगा। मजदूरों के मेले कैसे होंगे? आज के समय में क्या खास होगा इन मेलों में? यह सब बातें मेरे दिमाग में उमड़ने-घुमड़ने लगीं, जब कुछ समय पहले मैं एक मेला देखने गया। अपने मन में चल रही उथल-पुथल को बताने के बजाय इस मेले की एक झलक आपके सामने रखना चाहूँगा।

यह मेला पांच अक्टूबर, 2003 को दशहरे के दिन रामलीला मैदान (नोएडा सेक्टर-22 के स्टेडियम) में लगा था। इस मेले में मैं पहली बार गया था। हालांकि, वह बाल-सुलभ उत्साह नहीं था लेकिन यहाँ मेला देखने का मजा ही कुछ और था। जब मैं चौड़ा मोड़ पर पहुँचा तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। सड़क पूरी ठसाठस भरी हुई थी। यादें जोर मारने लगीं, बचपन के दिन ताजा होने लगे। क्या यह वही रोड है, जिस पर झुण्ड के झुण्ड काम पर जाते लोग, जैसे किसी चीज से उन्हें हाँका जा रहा हो और धूल उड़ाती तेज रफ्तार से भागती बसें ही दिखती थीं। वही लोग, वही सड़क आज सब कुछ नया-नया सा लग रहा है। वही लोग जिनके चेहरे पर एकरस भाव, शान्त खामोशी छायी रहती है आज उल्लसित भाव से चले जा रहे हैं। रोज-रोज की थकान से दूर सबके चेहरे पर ताजगी और उल्लास है। ऐसा लग रहा है कि अलगाव से दूर किसी ऐसी सामूहिक जगह पर आ गये हैं जहां सबकी नजरों में बराबरी और सम्मान है। काश! ऐसा ही होता। सारे लोग किसी चीज से गुंथे हुए खिंचे चले आ रहे हैं। जितने लोग जा रहे हैं उतने ही लोग आ रहे हैं। ऐसा लग रहा है आज बेरोक-टोक चलने की आजादी है। आज कोई पुलिसवाला घूरेगा नहीं। कोई सीटी नहीं मारेगा और न ही हवा में डण्डा लहरायेगा। आज सबके कपड़े साफ हैं, ज्यादातर लोगों के प्रेस भी हुए हैं। कुछ लोगों ने नये कपड़े भी पहन रखे हैं। आज कंधे पर लंच बाक्स नहीं है या तो झोला लटका है या कंधा खाली है। ऐसे लग रहा है जैसे सबकी आज तनख्वाह मिली है और कल छुट्टी है, इसलिये मस्ती में जा रहे हैं।

सबसे ज्यादा खुश बच्चे हैं। जो बच्चे गुब्बारे, मिट्टी के खिलौने, बजरंगबली का रंगबिरंगा गदा, पिपहरी, बाँसुरी और मिठाइयां इत्यादि ले लिये हैं, बजाते, खाते और इधर-उधर भाग कर अपनी माँओं को तंग करते चले जा रहे हैं। बच्चे कभी डिवाइडर पर चढ़ जाते और कूद कर मजा लेते कभी आगे निकलकर मां की नजरों से ओझल होने की कोशिश करते। जो बच्चे अभी मेले की तरफ जा रहे हैं, उन्हें मेले में पहुँचने की बड़ी जल्दी है। हालांकि माँ की पकड़ मजबूत है फिर भी बच्चे छूटकर आगे भाग जाते और डिवाइडर पर चढ़कर उस पटरी पर के बच्चों के खिलौनों और मिठाइयों को ललचायी आँखों से देखते। लेकिन चेहरे पर यह ताव भी है कि हम उससे बड़ा गुब्बारा खरीदेंगे, इतनी लम्बी बांसुरी खरीदेंगे कि उसकी आवाज सुनकर लोग चकित हो जायेंगे।

हजारों में एक, कुछ लोग जो अच्छे किस्म के कपड़े पहने हैं, उनके जूते भी उम्दा किस्म के हैं। लाल-लाल गाल हैं, ललाट चमक रहा हे लेकिन मुंह बिचकाये हुए हैं मेले से खिन्न हैं। वे खिन्न हैं कि इतनी भीड़, इतनी धूल और कितना शोर है बाप रे बाप...। वे अपने बच्चों को बीच-बीच में घसीटते हुए डांट पिला रहे हैं-कहा था न कि मत चलो देख लिया न मजा, बाल, कपड़े सब धूल से अट गये हैं। पता नहीं क्या रखा था इस मेले में...। लेकिन बच्चे हैं कि एक नहीं सुनते वे लोगों को देखकर खुश हैं। अभी तो वे मध्यवर्गीय नफासत से अछूते हैं। वे मगन हैं, क्योंकि घरों, स्कूलों और बसों में कैद रहने में ऐसी मौज कहां।

गाड़ी-बस सब बन्द हैं, दुपहिया वाहन भी नहीं चल रहे हैं। जिन लोगों ने मोटरसाइकिल घुसा दी है वे बड़ी सांसत में हैं क्योंकि सोचा था आगे भीड़ कम होगी लेकिन आगे हो या पीछे लोग ही लोग हैं।

चौड़ा मोड़ के चौक से ही रामलीला मैदान का कोना शुरू होता है। यहाँ से चारों तरफ जहाँ तक दिखाई पड़ रहा है सड़कें खचाखच भरी हुई हैं। पूरे स्टेडियम पर धुन्ध छायी हुई है। जैसे पीला कुहरा। स्टेडियम के चारों तरफ के सेक्टरों पर यह धुन्ध फैल गयी है। इस जनसैलाब को आंकना बड़ा मुश्किल है क्योंकि लगभग एक वर्ग किलोमीटर का स्टेडियम खचाखच भरा हुआ है। और चारों तरफ की सड़कों पर दूर-दूर तक लोग ही दिखाई पड़ रहे हैं।

कहीं कोई दिशा-निर्देश नहीं, कहीं दायें-बायें का रोक नहीं और न ही कहीं पार्किंग का चक्कर, पूरे देश भर के लगभग सभी जाति-धर्मों के मेहनतकशों का संगम है। इसके लिये कहीं कोई फौज-फाटा, कोई अज्र-बज्र आदि की कोई जरूरत नहीं है। किसी को आतंकवादी कार्रवाई का कोई भय भी नहीं है।

मेले में रामलीला मैदान में खड़ी तीन मूर्तियां आकर्षण का केंद्र बनी हुई हैं। रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण की ये मूर्तियां हैं। मूर्तियों में रावण की मूर्ति सबसे बड़ी है और ये मूर्तियां लगभग एक किलोमीटर की दूरी से ही दिखाई दे रही हैं। पूरे रामलीला मैदान और स्टेडियम के रोड पर किनारे-किनारे दुकानें सजी हैं। तरह-तरह के खिलौने, मिठाइयाँ और चाट-पकौड़े आदि। लोग रात होने का इन्तजार कर रहे हैं। जब इन मूर्तियों में विस्फोट होगा, तो पूरा आकाश जगमगा जायेगा। मूर्तियों के सामने की तरफ मंच लगा है वहां राम, लक्ष्मण और हनुमान बने तीन लड़के बैठे हैं। मंच से किसी के भाषण देने की आवाज लगातार सुनाई दे रही है। लेकिन किसे परवाह कि क्या कह रहे हैं। मंच के पास कुछ वर्दीधारी बैठे हैं। वे इस मेले में विजातीय-से लग रहे हैं। आज उनकी कुछ विचित्र स्थिति है। आम तौर पर गुस्सा दिखाने वाले आज खुश लग रहे हैं और मजे की बात यह है कि इतने बड़े जनसैलाब के बावजूद उनके चेहरे पर चुनावी रैलियों जैसा तनाव नहीं है।

शाम ढल चुकी है, कुछ समय बाद रात होगी और फिर होगा जोरदार धमाका। लोग कहीं रुक नहीं रहे हैं, लगातार गतिमान हैं। स्टेडियम के अन्दर चूंकि घास है अतः धूल कम उड़ रही है। वहां लोग बैठकर पुतले दहन का इन्तजार कर रहे हैं और मूंगफली, जलेबी आदि चीजें खा रहे हैं। बच्चे तो यहां और धमाचौकड़ी मचा रहे हैं। जिनका गुब्बारा अभी सलामत है वे उसे आसमान में टांग देने के लिये जैसे ठान लिये हों। बांसुरी में पूरा जोर लगाकर फूंक मार रहे हैं।

शाम ढल गयी रात होने लगी, कुछ लोग इन्तजार करके चल दिये। लेकिन अभी आधे से अधिक लोग हैं जो बेसब्र हो रहे हैं। आखिर वह समय आया जब भड़ाका हुआ और तीनों मूर्तियां बारी-बारी से धू-धूं कर जलने लगीं। चारों तरफ उजाला हो गया और लोग अब खुशी-खुशी घर जा रहे थे।

● धनंजय

पंजाबी कहानी

नहीं, हमें कोई तकलीफ नहीं

• अजीत कौर
अनुवाद : सुभाष नीरव

एक सुखद आश्चर्य का अहसास कराती पंजाबी लेखिका **अजीत कौर** की यह कहानी 'कथादेश' के मई 2004 के अंक में पढ़ने को मिली। कहानी में भारतीय समाज के जिस यथार्थ को उकेरा गया है वह कोई अपवाद नहीं वरन एक प्रतिनिधि यथार्थ है। भूमण्डलीकरण के मौजूदा दौर में आज देश के तमाम औद्योगिक महानगरों में करोड़ों मजदूर जिस बर्बर पूँजीवादी शोषण-उत्पीड़न के शिकार हैं, यह कहानी उसकी एक प्रातिनिधिक तस्वीर पेश करती है। इसे एक विडम्बना के सिवा क्या कहा जाये कि तमाम दावेदारियो के बावजूद हिन्दी की प्रगतिशील कहानी के मानचित्र में भारतीय समाज का यह यथार्थ लगभग अनुपस्थित है, जबकि हिन्दी के कई कहानीकार औद्योगिक महानगरों में रहते हुए रचनारत हैं। हिन्दी की प्रगतिशील कहानी के मर्मज्ञ कहानी के इकहरेपन या सपाटबयानी के बारे में बड़ी विद्वतापूर्ण बातें बघार सकते हैं लेकिन इससे यह सवाल दब नहीं सकता कि आखिर हिन्दी कहानी इस प्रतिनिधि यथार्थ से अब तक क्यों नजरें चुराये हुए है? बहरहाल 'बिगुल' के पाठकों के लिये यह कहानी प्रस्तुत है। पाठक स्वयं कहानी में मौजूद यथार्थ के ताप को महसूस कर सकते हैं। -सम्पादक

•

रात बहुत देर गये मेरे अखबार के चीफ रिपोर्टर का फोन आया कि अभी पीटीआई की खबर आयी है कि फरीदाबाद में मजदूरों ने हड़ताल कर दी है, बहुत तनाव है! जिस फैक्टरी से यह हड़ताल शुरू हुई है, वहाँ एक मजदूर मर गया है! सुबह सीधे घर से ही चली जाना, दफ्तर आने की जरूरत नहीं, पूरी बात का पता लगाकर शाम को स्टोरी फाइल कर देना।

अगली सुबह।

फरीदाबाद!

जिस फैक्टरी से हड़ताल शुरू हुई थी, उसके बाहर मजदूरों का तगडा जमघट था। हवा में गुस्से और नफरत की गन्ध थी।

फैक्टरी का गेट बन्द था। बाहर, दूर दरख्तों के नीचे और दरवाजे के पास और सड़क के आसपास मजदूरों के झुंड बैठे थे, खड़े थे। हर नये आने वाले व्यक्ति को देख रहे थे। कुछेक बातें भी कर रहे थे, मशवरे कर रहे थे, पर सबके चेहरों पर से रात का अँधेरा झर रहा था-राख की तरह।

मैंने गेट के अन्दर की ओर खड़े चौकीदार को अपना प्रेस-कार्ड दिखाया। सींखचों के बीच से ही उसने प्रेस-कार्ड देखा और गेट के साथ बने छोटे-से कमरे में से टाइमकीपर को बुला लाया। उसने भी प्रेस-कार्ड को देखा, और गेट थोड़ा-सा खोलकर मुझे अन्दर घुसा लिया। अपने कमरे में ले जाकर वह टेलीफोन पर किसी को मेरे बारे में बताने लगा।

मालिक ने शायद इजाजत दे दी थी। सो, वह मुझे लेकर अन्दर फैक्टरी की इमारत की ओर बढ़ने लगा, आगे-आगे। मैं जरा तेज कदम चलकर उसके संग हुई, "किले जैसी फैक्टरी है तुम्हारी। नहीं?" सोचा था, बात में से बात निकलेगी। पूछ-पड़ताल करते वक्त कई बार ऐसे लोगों से बड़े-बड़े सुराग मिल जाते हैं, पर वह था कि माथे पर त्यौरी चढ़ाये सिर्फ इतना ही बोला, "हड़ताल के दिनों में बनाना ही पड़ता है किला,। वरना, ये मजदूर पता नहीं क्या कर दें।" और उसने कदम और तेज कर लिये।

मुझसे वह कोई वास्ता नहीं रखना चाहता था।

अन्दर, फैक्टरी का मालिक वातानुकूलित एक खुले कमरे में बैठा था। चमचमाती मेज के दूसरी ओर। चिकना चेहरा, फ्रेम की ऐनक के पीछे से झाँकती शातिर, एक्सरे जैसी आँखें। गोश्त के थैले-सा जिस्म, मश्क जैसा। मेज पर चार टेलीफोन, कागज, कलमें, कलमदान, पेपरवेट, फाइलों के ढेर।

चाय का आर्डर उसने मेरे न-न करने के बावजूद दे दिया और मुझे बताने लगा, "कोई कैसे डिसीप्लिन रख सकता है? ये मजदूर तो चाहते हैं, काम करें न करें, इनके आगे ठाकुरों की तरह माथा टेकते रहें और बस पैसे देते जायें,। पर अब बताओ, अगर किसी को चोरी करते रंगे हाथों पकड़ लिया जाय, तो भी चुप रहें? अगर कोई चोरी करता पकड़ा जाय तो उसको पलंग पर बैठाकर चोरी सह लें? वह प्रीतम भी चोरी करते पकड़ा गया था। पकड़कर पुलिस को दे दिया। आगे पुलिस जाने और वह जाने। अब पुलिस भी अगर चोरों से नहीं निबटेगी, उनसे चोरी कुबूल नहीं करवायेगी, चोर को सजा नहीं देगी, तो इस मुल्क में कोई लॉ एंड ऑर्डर रह जायेगा?"

"चोरी क्या की थी उसने?" मैंने पूछा।

इतने में चपरासी चाय लेकर अन्दर आया। आबनूसी ट्रे में चाँदी रंगा चमकता टी-सेट। पीछे-पीछे एक और आदमी दूसरी ट्रे उठाये आया। छोटी प्लेटों में नमकीन, पिस्ते, काजू, बिस्कुट।

चाय का कप तो मैंने पकड़ लिया क्योंकि चाय पीते हुए आप निश्चिंत हो सकते हैं कि दूसरा व्यक्ति अब किसी बहाने भी कमरे में से खिसक नहीं सकता, न ही आपको खिसका सकता है। बात को जितना खींचना हो, उतना ही चाय को खींचते रहो। आधा घंटा अगर आप सामने वाले व्यक्ति से बात करना चाहो, तो कप आधे घंटे में खाली करो। यह तरीका मैंने बड़े अनुभव से सीखा है। सो, इसे ही इस्तेमाल करना चाहती थी। वरना तो सामने वाला व्यक्ति किसी भी समय मेरे किसी प्रश्न से तिलमिलाकर इस मीटिंग को खत्म कर सकता था।

"चोरी क्या की थी उसने," मैंने फिर पूछा।

"मशीनरी के पुर्जे थे, कुछ रॉ-मैटीरियल था।"

"कैसे पकड़ा आपने?"

"बस जी, बड़े-से थैले में भरकर उसने वो पम्प के पास ले जाकर रख दिया ताकि छुट्टी के बाद चुपचाप ले जायेगा। पकड़ा गया।"

"किसने पकड़ा?"

"चौकीदार ने।"

"फिर?"

"फिर क्या, हमने पुलिस को रिपोर्ट की। उन्होंने उसको हिरासत में ले लिया।"

"कितना समय रहा हिरासत में?"

"यही कोई, दसेक दिन।"

"दस दिन, मैजिस्ट्रेट को पेश नहीं किया?"

"नहीं, तफतीश कर रहे थे अभी।"

"फिर? मरा कैसे? हिरासत में ही?"

"हिरासत में ही, बिलकुल हिरासत में। पुलिसवाले यहाँ लेकर आये थे उसे। तफतीश करने के लिये ही। बस, पैर फिसल गया और कास्टिक टैंक में गिर गया। यह भी शुक्र है कि पुलिस की हिरासत में था वह उस वक्त। पुलिस खुद साथ थी। वरना तो मजदूरों का कहना था-शायद हमने ही धक्का दे दिया होगा उसे टैंक में।"

"फिर यह हड़ताल क्यों की है मजदूरों ने?"

"बस जी, यह तो इनसे ही पूछो। भई, जब पुलिस खुद उसके साथ थी, पुलिस की हिफाजत और हिरासत में था वह, तो उसकी मौत के लिये किसी को कैसे जिम्मेदार ठहराया जा सकता है?"

"आपकी फैक्टरी के साथ ही दूसरी फैक्टरियों के मजदूरों ने भी हड़ताल कर दी है।"

"बस जी, इनका क्या है! भूंडों के समूह की तरह उठ खड़े होते हैं सारे, छोटी-छोटी बात पर। न इनका कोई नुकसान होना है, न इनकी करोड़ों की मशीनें खाली पड़ी रहेंगी, न इनके माल की सप्लाई रुकने से करोड़ों का नुकसान होगा। इनका क्या है! जिन्दाबाद-मुर्दाबाद के नारे लगाये और लाल झंडियाँ डंडों पर टाँगकर चल पड़े। बाद में हल्ला-गुल्ला कराकर इस आवारागर्दी की तनख्वाह भी ले ली। कोई कानून होना चाहिए इस अन्धेरगर्दी को रोकने के लिये। तुम अखबारवालों को लिखना चाहिए इसके बारे में, सरकार को जागना चाहिए।"

"अब क्या ऐक्शन ले रहे हैं आप?"

"हमने क्या ऐक्शन लेना है जी? उसके परिवार को पाँच हजार रुपया दिया है। वैसे बनता नहीं था हमारा कुछ भी देना, क्योंकि नौकरी से तेा उसने इस्तीफा दे रखा था। पर हम खुदा का खौफ रखने वाले बन्दे हैं, सो उसके परिवार की इमदाद कर दी है इन्सानियत के नाते।"

"इस्तीफा? वह काम नहीं करता था अब आपके पास?"

फैक्टरी मालिक ने कुर्सी पर थोड़ी करवट-सी बदली। "नहीं, काम तो करता था। पर उसने इस्तीफा दे रखा था। नौकरी छोड़कर पता नहीं क्या पापड़ बेलना चाहता था। आखिर के चार दिन ही थे उसकी नौकरी के। शायद, इसी कारण उसने सोचा होगा कि जाते-जाते ही हाथ मार लूँ।"

तभी, एक आदमी ने आकर फैक्टरी मालिक के कान के पास कुछ खुसुर-फुसुर-सी की। मैंने कागज समेटे, कलम बन्द किया और उठ खड़ी हुई। उसने रस्मी तौर पर कहा, "आपने कुछ खाया ही नहीं। कुछ तो लो।" मैंने कहा, "नहीं, आज नहीं। शायद, फिर से आना पड़े आपके पास किसी समय, फिर सही।"

जाहिर है, वह भी बला के टलने से काफी मुतमइन था। कमरे के दरवाजे तक दो कदम मेरे संग चला आया।

"बॉय द वे, वह कास्टिक टैंक कहाँ है?"

उसके चेहरे पर एक परछाई-सी गुजर गयी। पर ऐसे लोग सारी परछाइयाँ साफ करने के लिये झाड़ू भी तैयार रखते हैं। उसने परछाईं को तुरन्त साफ किया। एकदम साफ। मुस्कुराहट फिर बदस्तूर अपनी जगह पर आ चिपकी।

"वह अन्दर है।"

"उसमें गिरने के लिये ऊपर जाना पड़ता होगा? सीढ़ियों से?"

उसकी ऐनक की घोड़ी के नीचे से त्यौरियों का त्रिशूल ऊपर उठा। उसका वश चलता तो त्रिशूल वह मेरे पेट में घुसा देता। पर तुरन्त ही, त्रिशूल गायब हो गया। मुस्कुराहट वापस आ गयी।

"क्या मतलब?"

"वह टैंक में ही गिरा था न?"

"यस।" (मैंने पहले भी देखा है कि हम झूठ बोलने के लिये, गुस्से की छटपटाहट में हमेशा दूसरी जबान का इस्तेमाल करते हैं। नहीं? मैं सोच रही थी।)

"कहाँ से गिरा?"

"ऊपर से।"

"ऊपर क्या करने ले गयी थी पुलिस उसे?"

"आपको बताया है न, तफतीश कर रही थी पुलिस।"

"औजारों वाला थैला तो आप कहते हैं, पम्प के पास मिला था चौकीदार को। फिर, तफतीश करने के लिये ऊपर ले जाने की क्या जरूरत थी? ऐसी जगह, जिसके ऐन नीचे तेजाब से भरा टैंक था।"

फैक्टरी मालिक अब वाकई खीझ गया। अपना गुस्सा और बौखलाहट छिपाने की कोशिश भी छोड़ दी उसने, "ये तो आप पुलिसवालों से ही पूछो। वे ही बेहतर जानते हैं। और..." उसने घड़ी देखी, "मेरा एक अपाइंटमेंट है अब, एक्सक्यूज मी।" और उसने चपरासी से कहा कि वह मुझे गेट तक छोड़ आये।

रास्ते में मैंने चपरासी को कुरेदने की कोशिश की, "लाश देखी थी तुम लोगों ने? कास्टिक के टैंक में से तो सड़े गोश्त का ढेर ही निकला होगा। तेजाब..."

वह दाँत खुरचता रहा और साथ-साथ चलता रहा।

"तुम लोगों का भाई बंद था आखिर। आज उसके संग ऐसा हुआ है, कल तुम्हारे संग भी हो सकता है। नहीं?"

"जब होगा, देख लेंगे। और हो ही जायेगा, फिर देखना क्या? फिर तो हमारे यतीम बच्चे देखेंगे, या फिर बेवा औरत।"

"पर इसका मतलब तो यह हुआ कि मौत से पहले सब कुछ चुपचाप देखे जाओ। तुम्हारा साथी तुम्हारे सामने तेजाब के टैंक में जिन्दा जला दिया जाय और तुम..."

हम गेट से चार कदम ही दूर थे कि पीछे से काले रंगे की शैवरलेट आयी और तेजी से हमारे करीब से गुजर गयी। कार को दूर से ही देखकर चौकीदार ने बड़ी फुर्ती से गेट खोल दिया था। कार के स्याह रंग के शीशों के पास मुझे कुछ भी नजर नहीं आया, पर जाहिर है कि उसमें फैक्टरी का मालिक ही रहा होगा।

गेट के बाहर बैठे मजदूर कार की ओर सूनी नजरों से देख रहे थे। कार धूल उड़ाती हुई दूर चली गयी तो उन्होंने मेरी ओर देखा। उनके चेहरों से अब और अधिक कालिख झर रही थी। मैं उनके संग बात करने लगी तो एक जवान मजदूर आगे बढ़कर कहने लगा, "क्या फायदा है इस जुल्म के बारे में लिखने का? क्या फायदा है अखबारों में छपी खबर का? क्या बनता-बिगड़ता है अखबारी खबरों से? अगर कुछ बनता-बिगड़ता है तो सिर्फ पैसे की ताकत से। हमारे पास भी पैसे की ताकत होती तो हम भी एक-आध नेता खरीद लेते और वह अपने आप पार्लियामेंट में हल्ला मचाता। पुलिस को खरीद लेते तो वह कातिलों को फाँसी दे देती। सिर्फ एक ही ताकत है, पैसे की।"

(पेज 11 पर जारी)

नहीं, हमें कोई तकलीफ नहीं

(पेज 10 से आगे)

"क्यों? सच बात अखबार में छपे तो हंगामा तो होता ही है। सबको पिस्सू पड़ जाते हैं। सच्चाई ढूँढनी पड़ती है उन्हें-पुलिस को, हुकूमत को, सबको।"

"आजकल इस मुल्क में दो तरह की सच्चाई चलती है जी। उसी तरह जिस तरह दो तरह का पैसा चलता है-नम्बर एक का और नम्बर दो का। सच्चाई भी नम्बर एक की और नम्बर दो की चलती है। आप कौन-सी सच्चाई की बात करते हैं जनाबेआली?"

एक और मजदूर आगे आया। स्याह रंग, सख्त जबड़े, धरती के नीचे वाले बैल के भाँति कन्धे, चौड़े-चकले हाथ। बोला, "प्रीतम का कत्ल किया गया है।"

"प्रीतम? प्रीतम नाम था उसका?"

"हाँ जी, प्रीतम। उसका कत्ल किया गया है जानबूझ कर।"

"किसने कत्ल किया? पुलिस ने?"

"पुलिस? पुलिस क्या होती है? एक वर्दी, एक डंडा, एक बन्दूक।"

"पुलिस ने तो पहले ही पन्द्रह दिन मार-मारकर उसकी खाल उधेड़ दी थी।" एक अन्य मजदूर बोला।

"पर क्यों? वो कहते हैं कि चोरी करते पकड़ा गया था।"

"चोरी तो तब करेगा न, जब अन्दर काम करता होगा। काम तो वह कर ही नहीं रहा था। इस्तीफा दे चुका था।"

"इस्तीफा?" मैंने पूछा।

"हाँ, इस्तीफा उन्होंने मंजूर नहीं किया था। प्रीतम ने कहा-ठीक है, महीने भर की तनख्वाह काट लो, पर नौकरी मैं नहीं करूँगा।"

"झगड़ा हुआ था कुछ?"

"बिल्कुल नहीं। वह तो मालिक का बहुत राजदार आदमी था। हर समय साथ। तड़के मालिक की कोठी जाता था। मोटर में साथ ही फैक्टरी आता था। मालिक के बहुत से काम बाहर करने जाता था। कार में जाता था, कार में ही लौटता था। शाम को घर भी मालिक के संग ही जाता था। मालिक के साथ ही कभी दिल्ली, कभी मुम्बई और कभी कहीं और।"

"फिर?"

"हमारे संग तो वैसे भी उठता-बैठता कम ही था। वक्त ही नहीं मिलता थाउसे। पर कुछ दिन से उदास-सा रहता था। कई बार रात का खाना खाकर हमारे में से किसी के घर आ जाता। कहता-कैसी कुत्ती नौकरी है! काजल की कोठरी है भाई! काजल की कोठरी!"

"इसी कारण इस्तीफा दिया था उसने?"

"यह तो मालूम नहीं। जिस दिन इस्तीफा दिया, उस दिन दोपहर में लंच की छुट्टी के वक्त मेरे पास आ बैठा। बोला-मौज है तुम्हारी। लंच के समय ससुरी सारी दुनिया को भूलकर रोटी तो पेट भर खाते हेा। दुख-सुख की बात करते हो एक-दूसरे से। बस, मैं भी इस्तीफा दे आया। मेरा भी इसी तरह बेफिक्री के साथ पेट भरकर रोटी खाने को दिल करता है, अपने बच्चों के पास बैठकर। मैं हैरान हुआ। हम सब तो सोचते थे कि पट्ठा बड़ी ऐश करता है। मोटरों में घूमता है। मैंने कहा-नौकरी छोड़कर करेगा क्या? कहने लगा-बाजार में साइकिलों की दुकान खोलूँगा। पुराने साइकिल खरीदकर, मुरम्मत करके बेचा करूँगा। फिर, धीरे-धीरे किसी साइकिल की एजेंसी भी शायद मिल ही जाये।"

"बाजार में एक दुकान किराये पर उसने ले भी ली थी। जिस दिन पकड़ा गया, उस दिन वह अपनी दुकान को ही ठीक-ठाक कर रहा था।" एक और व्यक्ति बोला।

"क्या मतलब? वह फैक्टरी में नहीं पकड़ा गया?"

"वह तो मालिक ने अपना आदमी भेजकर उसे बुलाया था। पता नहीं क्या सोचकर वह चला गया उस आदमी के साथ। शायद, सोचा होगा कि इस्तीफे के बारे में कोई बात करनी होगी मालिक को। वह फैक्टरी गया। मैंने खुद देखा उसे अन्दर मालिक के दफ्तर की ओर जाते। बस, जब बात करके बाहर निकला तो चौकीदार पम्प के पास से सामान भरा थैला उठा लाया और शोर मचा दिया।"

"फैक्टरी के अन्दर गया ही नहीं वह?"

"बिल्कुल नहीं। काम ही नहीं कर रहा था कई दिनों से वह फैक्टरी में। वो आप खुद ही देख रहे हो सामने..." और उसने अन्दर वाली बिल्डिंग की ओर बाँह लम्बी की, "वह है मालिक का कमरा, और वह है बाहर पम्प। अगर पुलिस ने तफतीश करनी ही थी तो या तो उसे पम्प के पास ले जाती या फिर मालिक के कमरे में। अन्दर फैक्टरी में, और वह भी तेजाब के टैंक के ऐन ऊपर ले जाने का क्या काम था?"

"जाहिर है कि साजिश थी उसको कत्ल करने की। पूरा प्लैन बनाया होगा मालिक ने, पुलिस के साथ मिलकर। पता नहीं कितना पैसा खिलाया होगा।"

"पर जब इतने दिन वह, क्या नाम था उसका? प्रीतम? जब हिरासत में था, तुमने क्यों नहीं कुछ किया?" मुझे बेहद गुस्सा आ रहा था इस सारे किस्से पर।

"असल में वह नौकरी छोड़ चुका था। यूनियन का मेम्बर भी नहीं था। सच बात पूछते हो तो वह कभी हमारे साथ रहा ही नहीं था। हमेशा मालिकों के पास ही रहा था। हम तो उसको गद्दार ही समझते थे हमेशा। जब कभी भी हमारी हड़ताल हुई, उसने कभी हमारा साथ नहीं दिया।"

"पर बन्दा तो तुम्हारा ही था। तुम्हारे जैसा ही मजदूर। तुम्हारा फर्ज नहीं बनता था कि...?"

"अब जब उसे मार ही दिया गया है, तो हमें लगा कि हमारा ही आदमी था। हमारी ही बिरादरी का, जो हमेशा जुल्म का शिकार होती रहती है।"

"तुम्हारी हड़ताल की माँग क्या है? क्या मैमोरंडम दिया है तुमने हड़ताल से पहले?"

"यही कि सारे मामले की पूरी जाँच होनी चाहिए।"

"जाँच से भी वैसे तो इंसाफ नहीं मिलने वाला नहीं है। अगर मालिक ने कत्ल किया है तो इस मुल्क की कौन-सी कचहरी मालिक को फाँसी की सजा दे देगी? और जिन पुलिसवालों ने मिलकर साजिश करके उसे मारा है, कौन-सा कानून उन्हें फाँसी पर चढ़ायेगा?" एक नौजवान मजदूर बहुत गुस्से में बोला।

उसके सवाल का मेरे पास कोई जवाब नहीं था। वैसे, शायद जवाब मुझे भी पता था और उन लोगों को भी।

"पर कारण क्या है उसके कत्ल का? मालिकों की क्या दुश्मनी थी उसके साथ?"

"मालिकों के कुछ खास भेद होंगे उसके पास। हर वक्त उनके साथ जो रहता था वह। इसी कारण उसका इस्तीफा मंजूर नहीं कर रहे थे। इसी कारण उसे वापस बुला रहे थे। यह बात नहीं थी कि उन्हें प्रीतम से मुहब्बत थी। फिर, वापस क्यों बुला रहे थे?"

"मुझे उसके घर ले जा सकते हो? मैंने एक मजदूर से पूछा।"

●

एक छोटी -सी गली के पिछवाड़े में उसके घर के बाहर एक चारपाई बिछी हुई थी, जिस पर एक जवान औरत बैठी एक बच्चे को कंघी कर रही थी। औरत की आँखों के पपोटे लाल सुर्ख थे, अंगारों जैसे, और सूजे हुए।

हमें देखकर उसने अपनी ओढ़नी को खींचकर कस लिया और कपड़ा माथे तक खींच लिया। कंघी करती रही, पर उसका कंघीवाला हाथ काँप रहा था।

"ये बीबी जी तुम्हें मिलने आयी हैं।"

मैं उसके समीप ही चारपाई पर बैठ गयी।

उसके चेहरे की ओर देखकर कलेजा मुँह को आता था।

वह मेरी ओर देख ही नहीं रही थी।

मैंने पता नहीं प्रीतम के बारे में क्या कहा, शायद रस्मी-से अफसोस के दो शब्द ही बोले होंगे, याद नहीं। उसकी झुकी हुई आँखों के सुर्ख पपोटों के नीचे पलकों से पानी के कतरे झरने लगे। वह बच्चे को कंघी करती रही।

तभी एक जवान लड़का अपनी पगड़ी लपेटता हुआ बाहर आया। मेरे संग गये मजदूर ने उसे मेरे बारे में बताया।

उसकी आँखें जलने लगीं।

"यह प्रीतम का छोटा भाई है, सत्ती।"

सत्ती मेरी ओर घूरता हुआ पगड़ी लपेटता रहा। और, फिर वह बोलने लगा, "कतल है ये, दिन-दिहाड़े कतल! और कोई सुनता ही नहीं। अखबार वाले आते हैं, मालिक लोग उन्हें भी पट्टे डाल देते हैं।"

मेरे संग गये मजदूर ने उसे आँखों से ही चुप रहने को कहा।

"ओए, मैं नहीं डरता किसी से। डरनेवाले को मार दिया उन कसाइयों ने। और पुलिस? पुलिस तो है ही जर-खरीद गोली उनकी। गरीब आदमी की कौन सुनता है? पर मैं अपनी बात सुनाकर रहूँगा। कोठे पर चढ़कर सुनाऊँगा सारी दुनिया को..." वह ऊँची आवाज में बोला।

मैंने जैसे उसे शान्त करने की कोशिश की, "कोई बात नहीं, काका।"

"बात कैसे नहीं जी? वे तो समझते हैं बन्दा मार दिया और बात खत्म हो गयी। उनके सारे भेद भी तेजाब के टैंक में जलकर फना हो गये। सारे पाप। पर मैं खत्म नहीं होने दूँगा बात।"

"यही तो मैं कह रही हूँ कि तुम अपनी बात किसी को ठीक से सुनाओ तो सही। सिर्फ गुस्सा करने से बात नहीं बनती। इस मुल्क में भी आखिर कोई कायदा-कानून है, सरकार है, डेमोक्रेसी है।"

"डेमोक्रेसी की माँ की..."

साथ वाले मजदूर ने उसे झिड़क कर चुप कराया, "अक्ल कर ओए सत्ती! आदमी देखकर बोला कर। मूर्ख न हो तो।"

"अक्ल? अक्ल तो घुस गई...मुझे तो कहर चढ़ा हुआ है। मेरा तो मन करता है, जिस तरह उन कसाइयों ने भाई का खून किया है, मैं सारों को पकड़कर आरे से चीर दूँ।"

और, फिर वह बताने लगा-एक आदिम काल की, पत्थर-युग की कहानी। वहशी और खौलते हुए क्रोध में। उसकी आँखों में अंगारे दहक रहे थे। और साथ में कुछ पिघल भी रहा था-लावे की तरह।

"भाई के पास बड़े राज थे मालिकों के। हर वक्त पता नहीं क्या-क्या करवाते रहते थे उससे। और पता नहीं किस तरह का उसके सिर पर वफादारी का भूत सवार था कि कभी घर में भी उसने कोई भेद साझा नहीं किया। कई बार शाम को चपरासी आकर सन्देशा दे जाता कि वह मालिकों के संग कहीं गया है, देर से लौटेगा। देर से क्या, कई बार तो मुर्गे की बाँग होने पर ही वह घर लौटता, अगले दिन तड़के। पर अब वह धीरे-धीरे इन कामों से खीझ रहा था। सारा गुस्सा आकर वह घर पर उतारता। या फिर गुमसुम होकर चारपाई पर लेटे-लेटे छत को घूरता रहता। मैं जब भी कहीं अपनी नौकरी की बात करता, वह मुझे झिड़क देता-नहीं सत्ती, हम अपना कोई काम करेंगे। नौकरी का भी ससुरा कोई जीना है। चाकरी तो होती ही बुरी है। बन्दा अपनी आत्मा को मार दे, तभी होती है चाकरी। वह कहा करता था।"

"और फिर उसने इस्तीफा दे दिया। क्या गुनाह किया...? साइकिल की दुकान खोल रहा था। घर में भी सबसे हँसकर बातें कर रहा था। उसकी छाती पर से मानो कोई पहाड़ उतर गया था। पर मालिक उसे चैन नहीं लेने दे रहे थे। रोज दिन में संदेशे आते। आखिर, एक दिन वह मालिकों के भेजे आदमी के संग फैक्टरी चला ही गया, मिलने के लिए। बताओ, जो आदमी मालिक के दफ्तर के अन्दर बैठकर बात करेगा, उसके पास फैक्टरी के औजार और पुर्जे कहाँ से आयेंगे? थैला कहाँ से भर लेगा वह? पम्प के पास वह गया ही नहीं। न ही अन्दर फैक्टरी के किसी भी फ्लोर में उसने पैर रखा। सब फरेब, झूठ, कुफर..."

"और, फिर पुलिस ने जिस तरह चौदह-पन्द्रह दिन उसकी खाल उतारी है, उल्टा लटकाकर जिस तरह उसके पैरों के तलुवों को पीटा है, मैं तो उनकी..."

और अब वह दहाड़ें मार-मार कर रो रहा था।

"फिर उसे कतल करने के लिए वो फैक्टरी में ले गये। कसाई! राक्षस! और फिर लाश पोस्टमार्टम के लिए पहुँचा दी। राक्षसो, मांस के झुलसे हुए लोथड़े का क्या करोगे पोस्टमार्टम तुम?"

वह बच्चों की तरह रो रहा था। चारपाई पर बैठी औरत, जो जाहिर है प्रीतम की बेवा थी, पल्लू आँखों पर रखकर सिसक-सिसककर रो रही थी। बच्चा चारपाई के पास खड़ा था, हैरान, झुलसा हुआ।

"काट-पीटकर बोरी की तरह सिलकर हमारा भाई हमारे हवाले कर दिया। ले जाओ और ले जाकर जला दो इस कूड़े को।"

उस औरत की हिचकियों में लम्बी-सी चीख भी शामिल हो गयी।

तभी, अन्दर से एक बुजुर्ग बाहर निकला। लाठी टेकते हुए। सिर पर मैली होती हुई पगड़ी। सफेद मटमैली-सी दाढ़ी। चेहरे पर बदहवासी।

बाहर आकर उसने आँखों के ऊपर अपनी हथेली की छतरी-सी बनायी और मेरी ओर देखा, गौर से। कहने लगा, "नहीं बीबी। हमें कोई तकलीफ नहीं। उस कमबख्त की मौत आयी थी, मर गया। पिछले जन्म का वैरी था, पेट पर लात मार गया।" और उसकी आवाज भर्राते हुए फट-सी गयी।

"किसी का कोई कसूर नहीं, बीबी। यह सत्ती तो पागल है, यूँ ही बोले जाता है।"

और, फिर उसकी दाढ़ी के सफेद बाल काँपने लगे। आवाज गले को खुरचकर बाहर निकली, फटी हुई, "एक तो गया, अब इसे भी गँवा बैठे!"

●

जम्हूरियत के जन्नत की जहन्नुमी हकीकत

इराक में अबू गरेब जेल की दिल दहलाने वाली घटनाओं का पर्दाफाश होने के बाद अमेरिकी सत्ताधारी बहुत बेशर्मी और थेथरई का परिचय देते हुए प्रचार कर रहे हैं कि यह चंद सिरफिरों और आपराधिक प्रवृत्ति के लोगों की करतूत है।

जार्ज डब्लू. बुश ने 5 मई 2004 को अल अरेबिया टेलीविजन पर हेकड़ी के साथ कहा, "जो कुछ अबू गरेब में हुआ वह असली अमेरिका नहीं है। जिस अमेरिका को मैं जानता हूँ वह स्वतंत्रता के सिद्धांतों में विश्वास रखने वाला एक सहिष्णु देश है।"

अमेरिकी स्वतंत्रता और सहिष्णुता के नाबदान का ढक्कन उस समय खुल गया जब न्यूयार्क मैगजीन ने यह सनसनीखेज रहस्योद्घाटन किया कि कैदियों से 'पूछताछ' की योजना को रक्षामंत्री डोनाल्ड रम्सफील्ड ने मंजूरी दी थी। इस में 'ज्वाइंट चीफ आफ स्टाफ' जनरल रिचर्ड मायर्स भी शामिल था। इस कार्यक्रम का सूत्र था, 'जिसे चाहे चंगुल में ले लो उसके साथ जो चाहे करो।'

अमेरिकी सैनिकों और पूर्व बंदियों ने यह रहस्योद्घाटन किया कि क्यूबा के पास गुआंतोनामो खाड़ी और अफगानिस्तान में भी अमेरिकी सैनिकों ने बंदियों को इसी तरह की यातनायें दी थीं।

अमेरिकी विश्वविद्यालयों में बर्बरता के अनेक तरीकों को बाकायदा शोध के जरिये व्यवस्थित-विकसित किया जाता है। अमेरिकी सैनिकों को इसकी ट्रेनिंग भी दी जाती है। इस दौरान ये तरीके उन पर भी आजमाये जाते हैं ताकि वे शारीरिक और मानसिक तौर पर तैयार हो सकें।

अपराध और बर्बरता की इस अत्यंत संगठित कार्रवाई को कोई सिरफिरा या शातिर ही चंद लोगों की आपराधिक कार्रवाई कह कर नजरअंदाज कर सकता है।

अमेरिकी सत्ताधारियों ने दुनिया के पैमाने पर तो अमानवीयता का तांडव रचा ही है स्वयं अपने नागरिकों के सर्वथा न्यायपूर्ण अधिकारों को भी पुलिस के बूटों तले रौंदने में परहेज नहीं करते। कुछ समय पहले जार्ज डब्लू. बुश द्वारा दिया गया बयान गौरतलब है। बुश ने बड़ी ही मासूमियत से विश्वास दिलाते हुए कहा, "निश्चित ही हम अमेरिकी जनता का दमन नहीं करते। जो लोग ऐसा कहते हैं वे हमारे देश के बारे में कुछ नहीं जानते।"

बुश महोदय की इस बात पर कोई यकीन भी कर ले मगर चीखते आंकड़ों को कैसे खामोश करें?

दुनिया के सब से सहिष्णु और लोकतांत्रिक सत्ताधारियों ने 20 लाख से ज्यादा अमेरिकियों को जेलों में सड़ने के लिए मजबूर कर दिया है। 50 लाख अमेरिकियों पर मुकदमों की तलवार लटक रही है।

अमेरिकी जेलों के बर्बर और अमानवीय हालात को उजागर करने वाली कई संगठनों की रपटों के अनुसार-"जेल गार्ड, बंदियों को मारने-पीटने, यौन उत्पीड़न, जमीन पर रेंगने के लिए मजबूर करने, कुत्तों से कटवाने और यहां तक कि गोली मारने से भी नहीं चूकते।"

जुलाई 2001 में आठ पुलिसकर्मियों पर कैदियों के बीच मध्ययुगीन तलवारबाजी का खूनी खेल आयोजित करने का आरोप लगा था। समझा जा सकता है कि हालात कितने विस्फोटक हैं। एक अमेरिकी जज को कहना पड़ा -"टेक्सास के जेलकर्मियों में विद्वेषपूर्ण उत्पीड़क मानसिकता का बोलबाला है।"

अमेरिकी न्याय विभाग ने जून 2003 में चार जेलों की सर्वेक्षण रिपोर्ट तैयार की जिसमें कहा गया है कि ब्रुकलिन बंदीगृह के सुरक्षाकर्मी और अधिकारियों द्वारा कैदियों को दीवार पर पटकने, फर्श पर ऊँचाई से फेंकने और बंदीगृह की दीवारों और दरवाजों से बांधने जैसी क्रूरताएं आम हैं। दक्षिणी डकोटा के महिला सुधारगृहों में जेलगार्डों द्वारा नाबालिग लड़कियों को बेड़ियों में जकड़ दिया जाता है। उनके नग्न शरीरों पर मिर्च पोत दी जाती है। उन्हें 24-24 घंटों तक एकांत में रखा जाता है। बुश महोदय शायद इसे भी अमेरिकी न्यायप्रियता और मानवीय गरिमा की रक्षा की एक मिसाल मानते हैं।

नागरिक अधिकारों की 'रक्षा'का एक और नायाब नमूना देखिये। अमेरिकी पुलिसकर्मियों ने जुलाई 1999 में फ्रैंक वाल्दज को अपने बूटों से इतना मारा कि उस की पसलियां टूट गयीं। अंततः उसकी मौत हो गयी। यह उस स्वर्ग की बानगी है जिसे अमेरिका कहते हैं। ऐसा है वह लोकतंत्र का सितारा जिसकी चमक के सामने पूरी दुनिया की इंसानियत चुँधिया रही है!

- अंशुमान

मेहनतकशों की छाती पर पहाड़ बनकर लदा "जनतंत्र" का बोझ

क्या आपको अनुमान है कि हम अपने जिन तथाकथित जनप्रतिनिधियों को संसद-विधानसभाओं में चुनकर भेजते हैं वे अपनी जनसेवा की कितनी कीमत वसूलते हैं? शायद ठीक-ठीक नहीं। पिछले दिनों एक समाचार चैनल ने इस बारे में आँखें खोल देने वाली जानकारी दी। एक आँकड़ा विशेषज्ञ के.के. मीमानी के विश्लेषण के हवाले से इस चैनल ने आँकड़े प्रस्तुत किये कि हरेक सांसद को हर साल विभिन्न मदों में कितना रुपया हासिल होता है।

यूँ सांसदों की तनख्वाह तो बेहद मामूली है-केवल 12,000 रुपये महीना यानी कुल एक लाख 44 हजार रुपये सालाना। उन्हें असली रकम विभिन्न प्रकार के भत्तों के रूप में मिलती है। हर सांसद को दफ्तर खर्च के लिये 3000 रुपये महीना या 36 हजार रुपये सालाना और चिट्ठी-पत्री के लिये 1000 रुपये महीना या 12 हजार रुपये सालाना मिलते हैं। हर सांसद को निजी सचिवालय चलाने के लिये 10,000 रुपये महीना या एक लाख 20 हजार रुपये सालाना मिलते हैं।

इतना ही नहीं अभी सारी रकमें जोड़ते जाइये। हर सांसद को चुनाव क्षेत्र भत्ता भी मिलता है-दस हजार रुपया महीना या एक लाख बीस हजार रुपया सालाना। संसद सत्र के दौरान प्रतिदिन 500 रुपये दैनिक भत्ता भी मिलता है। साल में औसतन 270 दिन संसद चलती है, यानी साल में औसतन एक लाख 32 हजार रुपये और जोड़ लीजिये। हर सांसद को वाहन खर्च के लिये 8 रुपये प्रति किमी की दर से भत्ता मिलता है। साल में हर सांसद औसतन 25 हजार किमी की यात्रा का खर्च दिखा ही देता है। यानी, इस मद में भी सालाना लगभग दो लाख रुपये।

हमारे सांसद रेल यात्रा और हवाई यात्रा भी करते हैं। उन्हें प्रथम श्रेणी के वातानुकूलित डिब्बे में मुफ्त सफर की सुविधा हासिल है। इस मद में सालाना दस लाख रुपये का चूना सरकारी खजाने को लगता है। मुफ्त हवाई यात्रा सुविधा का खर्च भी लगभग छह लाख रुपये सालाना सरकारी खजाना वहन करता है।

हमारे जनप्रतिनिधि खुले आसमान के नीचे तो रहेंगे नहीं। वे वीआईपी लोगों के लिये खास तौर पर आरक्षित बंगले में रहते हैं, जिसका किराया और रखरखाव खर्च औसतन सालाना 15 लाख रुपये आता है। बिजली-पानी और टेलीफोन का बिल औसतन दो लाख 74 हजार रुपये महीना या 32 लाख 88 हजार रुपये सालाना बैठता है।

हमारे एक-एक सांसद को बस इतनी-सी रकम मिलती है। कुल हिसाब लगाया आपने? मात्र 62 लाख 55 हजार रुपये सालाना। यह एक सांसद का खर्च है। लोकसभा-राज्यसभा के सभी सांसदों की संख्या से इसका गुणा कर दीजिये। देश के सभी सांसदों की 'जनसेवा' की कीमत आपको पता चल जायेगी।

कहने की जरूरत नहीं कि सांसदों की इस शाहखर्ची की कीमत देश की मेहनतकश जनता ही अपना पेट काटकर और जीवन की बुनियादी सुविधाओं से वंचित रहकर उठाती है। आखिर कब तक "जनतंत्र" के नाम पर इस बोझ को हम सहन करते रहेंगे। क्या अपनी छाती पर लदे इस पहाड़ को हटाये बिना हमारे जीवन की मुसीबतें कम हो सकती हैं?

- विवेक

राजनीतिक मोतियाबिन्द के शिकार हमारे ये 'प्रगतिशील' कलमकार

केन्द्र में कांग्रेस की अगुवाई में संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन सरकार बनाने में वाम मोर्चे ने जो थूनी लगायी है उससे हमारे अनेक प्रगतिशील कहे जाने वाले साहित्यकार काफी गौरवान्वित हैं। पिछले लोकसभा चुनाव में भाजपा की हार पर उन्हें द्वितीय विश्वयुद्ध में सोवियत लाल सेना द्वारा फासिस्ट हिटलर की फौज को धूल चटाने जैसी खुशी महसूस हो रही है। तरह-तरह के अलंकारों से सजी-धजी भाषा में इस खुशी का इजहार किया जा रहा है।

एक प्रगतिशील मूर्धन्य नामवर आलोचक ने, जिन्हें कुछ लोग हिन्दी आलोचना के क्षेत्र के सुपर स्टार भी कहते हैं, पिछले दिनों मध्य प्रदेश में आयोजित एक गोष्ठी में अपनी खुशी का इजहार करते हुए कहा कि "पिछले चुनाव में हमने लड़ाई का पहला मोर्चा जीता है और हमें दूसरे मोर्चे पर लड़ाई लड़ना बाकी है।" आलोचक शिरोमणि यहीं नहीं रुके। उन्होंने आगे फरमाया कि अरसे से वामपन्थ ठहरा हुआ है और हमारे देश में हाशिये पर रहा है लेकिन अब मुख्यधारा में आ गया।

अभी तो केन्द्र की सरकार को संसदीय वामपन्थ ने सिर्फ थूनी लगायी है, तब यह हाल है। चुनावी सियासत के किसी करिश्मे से अगर इनकी सरकार बन गयी तब कहीं ऐसा न हो कि हर्षातिरेक से पागलपन का दौरा ही पड़ जाये। आलोचक प्रवर को इस उम्र में भला मार्क्सवाद और कम्युनिज्म का ककहरा पढ़ाने की जुर्रत भला कौन कर सकता है। उन्हें कौन बताये कि संसदीय सुअरबाड़े में बैठना एक सच्चे कम्युनिस्ट की रणकौशलात्मक मजबूरी तो हो सकती है कोई शान की बात हरगिज नहीं। लड़ाई का असली मोर्चा संसदीय चुनावों में नहीं जीता जाता जनसंघर्षों की ज्वालाओं से खेलते हुए जीता जाता है। लेकिन लम्बे समय संसदीय वामपन्थ की संगत में रहकर आलोचक प्रवर की मति मारी गयी है। उन्हें दुनिया के सर्वहारा संघर्षों के इतिहास की ये सीधी-सरल सच्चाइयाँ भूल गयी हैं। या उन्होंने जानबूझकर बिसरा दी हैं। इस पर कुछ कहना किसी की नीयत पर उंगली उठाना होगा। इसलिए नीयत पर उंगली उठाने के बजाय नीति पर कुछ कहना ही सही तरीका होता है।

सो, आलोचक प्रवर की निगाह में पहला मोर्चा (यानी राजनीतिक मोर्चा) फतह। अब दूसरे मोर्चे (यानी सांस्कृतिक मोर्चे) को फतह करने का मंसूबा बांधो। लेकिन जिस राजनीतिक मोतियाबिन्द का शिकार हो असली लड़ाई का मैदान छोड़ नकली लड़ाई में जीत को असली जीत कह कर डंका बजाया जा रहा हो उस नजर से दूसरे मोर्चे की लड़ाई का क्या हश्र होगा यह सोचकर ही सिहरन होती है।

आपने बिल्कुल ठीक फरमाया 'कामरेड'! आपकी जमात बेवकूफ हरगिज नहीं है!

पिछले दिनों पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य ने अपनी जमात की तारीफ में कुछ अनमोल वचन कहे। 'कॉमरेड' चीफ मिनिस्टर ने यह तारीफ एक पत्रकार के सवाल के जवाब में की। सवाल था कि केन्द्र में कांग्रेस की अगुवाई वाली गठबन्धन सरकार को वाम मोर्चे द्वारा समर्थन देने से पश्चिम बंगाल की राजनीति पर क्या असर पड़ेगा जहाँ कॉंग्रेस वाम मोर्चे की मुख्य विरोधी पार्टी है। इसके जवाब में बुद्धदेव जी ने फरमाया कि "हम बेवकूफ नहीं हैं। केन्द्र में हमने साम्प्रदायिक शक्तियों को सत्तासे दूर रखने लिये संप्रग सरकार को समर्थन दिया है। राज्य में कॉंग्रेस हमारी मुख्य विरोधी पार्टी बनी रहेगी।"

पत्रकार ने एक और सवाल पूछा कि आपकी पार्टी भूमण्डलीकरण की आर्थिक नीतियों का विरोध करती रही है जबकि 1991 में नरसिंह राव-मनमोहन सिंह सरकार ने इन नीतियों का श्रीगणेश किया था। ऐसे में कांग्रेस की अगुवाई वाली सरकार को समर्थन देने की क्या तुक है। इसके जवाब में भी मुख्यमंत्री महोदय ने काफी स्पष्टवादिता का परिचय दिया। उन्होंने साफ कहा कि हम भूमण्डलीकरण की नीतियों के विरोधी नहीं हैं। हम आँख मूँदकर इन नीतियों को लागू करने के विरोधी हैं। हम "मानवीय चेहरे के साथ भूमण्डलीकरण" के हामी हैं। इसके बाद उन्होंने आँकड़े देकर बताया कि पिछले बारह सालों में सबसे ज्यादा प्रत्यक्ष विदेशी पूँजीनिवेश बंगाल में हुआ है।

बुद्धदेव भट्टाचार्य की इस साफगोई पर मर-मिटने को जी चाहता है! अब इसके बाद भी इस लाल पताकाधारी पार्टी का कोई समर्थक यह कहे कि उसकी पार्टी भूमण्डलीकरण की विरोधी है तो उसकी अक्ल का भगवान ही इलाज कराये। 'बिगुल' के अनेक अंकों में अनेकानेक तथ्यों के हवाले से लगातार इस सच्चाई को उजागर किया जाता रहा है कि सीपीएम और सीपीआई भूमण्डलीकरण की नीतियों की समर्थक हैं और इनकी दुमछल्ली सीटू, एटक जैसी यूनियनें मजदूरों-कर्मचारियों को उल्लू बनाने के लिये नयी आर्थिक नीतियों के विरोध की जुगाली करती हैं और इनके खिलाफ संघर्ष के नाम पर रस्मी कवायद करती रही हैं। इस भण्डाफोड़ से दुखी होकर सीपीएम से जुड़ी बीमा यूनियन के एक सदस्य ने 'बिगुल' सम्पादक के नाम पत्र लिखकर विरोध तक जताया था। शायद अब इस साथी की आँखें 'कॉमरेड' चीफ मिनिस्टर के बयान से अपने आप ही खुल गयी हों।

बहरहाल, भूमण्डलीकरण की पैरोकारी के सम्बन्ध में बयान देने का औचित्य समझ में आता है। बयान मीडिया में आयेगा तो देशी-विदेशी सरमायेदारों को और शेयर बाजार के खिलाड़ियों को साफ सन्देश जायेगा। कॉमरेड चीफ मिनिस्टर की पार्टी की विश्वसनीयता इस जमात में बढ़ेगी। इसलिये यह बयान बहुत समझदारी भरा है।

'कॉमरेड' चीफ मिनिस्टर आपकी जमात की समझदारी के बारे में हमें कभी मुगालता नहीं रहा। जनसंघर्षों की आँच से दूर एयरकंडीशण्ड सत्ता महलों में बैठकर समाजवाद लाने की आपकी समझदारी हम तब से देख रहे हैं जब आपकी जमात ने तेलंगाना के किसान संघर्ष की पीठ में छुरा भोंक दिया था। ख्रुश्चेव के 'शान्तिपूर्ण संक्रमण', 'शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व', और 'शान्तिपूर्ण प्रतियोगिता' का मंत्रजाप करते हुए सड़क छोड़कर संसदीय सुअरबाड़े में बैठने का आनन्द जिस समझदारी से आपकी जमात उठा रही है, उसके क्या कहने! और अब तो इस सुअरबाड़े की सभा की सदारत का परमानन्द आपके एक बेहद तजुर्बेकार साथी को हासिल हो गया है।

आपकी जमात ने अब तक सिर्फ एक बेवकूफी की है-ज्योति दादा को प्रधानमंत्री बनने का अवसर गँवाकर। हम आपकी पीड़ा समझ सकते हैं। यह अवसर दुबारा जाने कब मिले। ज्योति दा तो अब पके आम हो चले हैं। जाने कब टपक पड़े। उनकी आत्मा साउथ ब्लॉक के आसपास भटकती न रहे, इसका उपाय तो आपको करना ही होगा। इसी तरह समझदारी से काम लेते रहे तो पितृ विसर्जन जैसे किसी कर्मकाण्ड का आइडिया सूझ ही जायेगा।

- आनन्द देव

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वानी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंगः कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
सम्पादकः **डा. दूधनाथ, मुकुल** ● सम्पादकीय पताः **69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006** ● सम्पादकीय उपकार्यालयः जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ